वर्ष १०, अंक २

श्रीकृष्णाय नमः

मार्गशीर्ष १९९२

नवम्बर

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—

म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	...	२९
२.	पुराण-गाथा	[ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी	३१
३.	आओ	[रचयिता श्री गोपीनाथ कुल श्रेष्ठ मैंराद्	३४
४.	मृत्यु	[ले० श्री यमुना प्रसाद श्रीवास्तव नरसिंह पुर	३५
५.	मन की गति	[रचयिता श्री लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा'	४०
६.	सम्राट् अशोक चरित्र	[ले० श्री मधुमङ्गल जी मिश्र बी. ए.	४०
७.	राम	[ले० श्री गोविन्दराम कुशक	४१
८.	पथिक	[ले० श्री गोविन्द राम शर्मा टीचर कुशक	४५
९.	संस्कृतोक्ति	[अनुवाद पं० नवल किशोर ब्रह्मचारी आश्रम	४७
१०.	प्रेम पन्थ	[रचयित्री श्री ब्रजकुमारी 'प्रभाकर' ग्वालियर	४८
११.	सच्चा सुख	[ले० श्री शान्ति मंडल छावनी नीमच	४९
१२.	शरच्छटा	[रचयिता श्री लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा' 'दमोह' सी. पी.	५०
१३.	उपदेशामृत	[ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	५४
१४.	भगवद् साकार सम्बन्धी कुछ विचार	[ले० श्री रमापाल जी भिवानी	५५
१५.	प्रेमा उन्मत्त दशा	[ले० श्री प्रज्ञाचक्षु पं० धनराज शास्त्री	५७
१६.	भजन	...	५९

सूचना

प्रिय पाठक गण !

अबके भक्ति पत्र में गलती से ३० सफे की जगह ३१ सफा छपगया है सो पाठक ठीक करके पढ़ें।

मैनेजर

भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और इसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई० रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
सूबदार मेजर दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	

सीताजीकी अग्नि-परीक्षा

विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम्।
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष १० | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, मार्गशीर्ष ता० १ नोम्बर, १९३५ | अंक २ पूर्ण संख्या ११०

वेदोपदेश

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधुकोशो अक्षरत्।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरूषु ऊतिभिरश्विना गतम्॥

दानशील अश्विद्वय, जिन उपायों द्वारा दीर्घतमाकी उशिज़ नामक स्त्री के पुत्र वणिक्-वृत्ति दीर्घश्रवाको मेघसे जल दिया था तथा उशिज़ पुत्र स्तोता कक्षीवान् की रक्षा की थी, उनके साथ आओ।

या वी रसां चोदसोदः पिपिन्वथुरनश्वं याभीरथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजतं ताभिरूषु ऊतिभिरश्विना गतम्॥

जिन उपायों के द्वारा नदियों के तटों को जल-पूर्ण किया था, अपने अश्व-रहित रथको, विजय के लिये, चलाया था तथा तुम्हारे जिन उपायों से कण्वपुत्र त्रिशोक नामक ऋषि ने अपनी अपहृत गौका उद्धार किया था, अश्विद्वय, उन उपायों के साथ आओ।

आसन प्राणायाम आदि से नहीं होता, ऐसा विद्वानों का मत है, इस बात को आप समझ गये हैं, ऐसा देखकर मुझे बहुत ही हर्ष होता है, क्योंकि वहां भगवान् की कथा रूप नदी में स्नान करने को मन रूपी हाथी लगगया कि फिर मोक्ष होने में देर नहीं लगती। इसलिये आप का प्रश्न बहुत सुन्दर है और सबका श्रेय करने वाला है इसलिये मुझे बहुत ही प्रिय है। मुझे तो सिवाय भगवान् के अलौकिक और पावन चरित्र सुनाने के अन्य कुछ सुहाता ही नहीं है, इसलिये मैं तुमको बड़े प्रेम से नृसिंह और भक्त प्रहलाद का संवाद सुनाऊंगा, जिसके सुनने से आपके मन स्वच्छ और निर्मल हो जायगें और आप को इतना आनन्द आवेगा कि आप सब आनन्द के सागर में मग्न हो जांयगे और आप को देह की भी सुध नहीं रहेगी। अच्छा आप सब सावधान होकर ध्यान देकर सुनिये। एकाग्र मन हुए बिना कथा में रस नहीं आता, आता भी है, तो थोड़ा आता है, पूरा २ रस तो एकाग्र मन होने से ही आता है।

हे शौनक! जैसे मैंने तुमसे कहा, उसी प्रकार ब्रह्मादिक देवताओं ने दूर खड़े होकर ही नृसिंह भगवान् की स्तुति करी, उनके पास जाने को कोई समर्थ न हुआ और उनके क्रोध को भी शान्त न कर सका। जब देवताओं ने देखा कि भगवान् का क्रोध शान्त नहीं हुआ, तो वे लक्ष्मी जी से इस प्रकार कहने लगे।

देवता—हे देवी! आप भगवान् की परम प्रिया हैं, आप उनसे कभी अलग नहीं होती और वे भी सर्वदा आपके साथ ही रहते हैं वह भी अलग नहीं होते जितनी क्रियायें वे करते हैं, आपको साथ लेकर ही करते हैं, आपके बिना नहीं करते। आप उनके स्वभाव को जानती हैं, आप उनके समीप जाकर उनको समझा बुझाकर उनका क्रोध शान्त कीजिये। हम सब आपका परम उपकार मानेंगे। भगवत् भक्तों के अधीन हैं और आप उनकी परम भक्त हैं, आपके सिवाय अन्य कोई उनके पास नहीं जा सकता इसलिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं।

लक्ष्मी—हे देवताओ! जब तुम पुरुष का अभिमान करने वाले यानी हम पुरुष हैं, ऐसा मानने वाले ही भय के कारण भगवान् के समीप नहीं जा सके, तब मैं तो स्त्री हूं, स्त्री स्वभाव से ही डरपोक होती है और उसका नाम भीरु है, तब मैं स्त्री होकर भगवान् के समीप कैसे जा सकती हूं। नहीं जा सकती। कोई भगवान् का पूरा भक्त, सच्चा भक्त ही भगवान् के पास जा सकता है और वह ही उन्हें समझा कर उनका क्रोध दूर कर सकता है। भगवान् के भक्त भगवान् के सिवाय और अन्य किसी से तो डरते ही नहीं, क्योंकि भगवान् के सिवाय वे अन्य को सच्चा ही नहीं समझते, जब भगवान् के सिवाय दूसरा है नहीं, तो डर किसका अथवा सब कुछ भगवान् ही हैं, तो भी डर किसका। भगवान् से भगवान् तो डर सके नहीं। अथवा भगवान् के भक्त भगवान् को स्वामी और अपने को भगवान् का दास समझते हैं। ऐसा समझने से भी उनको भय नहीं होता, क्योंकि भगवान् के दास भगवान् का कोई अपराध नहीं करते। अपराध करने वाले दास को ही स्वामी से भय होता है, अपराध न करने वाले को भय नहीं होता। जबतक प्राणी अपराध करता है, तबतक वह भगवान् का दास नहीं है और भगवान् भी उसे अपना दास स्वीकार नहीं करते! जब जीव सर्वथा निष्पाप हो जाता है, तभी भगवान् अपने दासों में उसको

पुराण–गाथ

प्रहलाद कृत नृसिंह स्तुति

[ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी]

शौनक–हे देवर्षे ! ब्रह्मादिक देवताओं ने नृसिंह भगवान् की स्तुति करी, इसको सुनकर हम सब को बहुत ही आनन्द हुआ है। इसके बाद क्या हुआ, यह हम आपसे सुनना चाहते हैं। ज्यों २ आपके मुखसे निकले हुए भगवान् के कथामृत को हम कानों द्वारा पान करते हैं, त्यों २ उसके पीने की रुचि बढ़ती जाती है। जैसे गंगा जलके पीने से प्यास नहीं बुझती ज्यों २ पीते हैं, त्यों २ अधिक तृषा बढ़ती है, यह ही जी चाहता है कि पिये ही चले जाओ, इसी प्रकार भगवान् के पावन चरित्र सुनने से हमारी तृप्ति नहीं होती, यह ही चित्त चाहता है कि सुनते ही रहो, इसलिये हम आपसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि आप हमको भगवान् नृसिंह रूपधारी का आगे का चरित्र सुनाइये। सब देवताओं ने उग्र रूपधारी भगवान् की स्तुति दूरसे ही करी है, इससे अनुमान होता है कि कोई देवता उनके समीप जाने को समर्थ नहीं हुआ। प्राय स्तुति पास खड़े होकर ही की जाती है, दूरसे नहीं की जाती दूरसे स्तुति करने से सिद्ध होता है कि सब देवता भयके कारण से भगवान् के समीप न जासके और भगवान् के क्रोध को भी शान्त नहीं करसके। जब देवताओं की स्तुति से भगवान् का क्रोध शान्त नहीं हुआ, तब किसप्रकार शान्त हुआ यह बात हम आपसे सुनना चाहते हैं और भगवान् और प्रहलाद का क्या संवाद हुआ, यह भी हमको सुनने की इच्छा है। प्रहलाद के स्तुति करने से ही भगवान् का क्रोध शान्त हुआ होगा, ऐसा हमको अनुमान होता है और प्रहलाद की करी हुई स्तुति होगी भी बहुत ही शोभन, क्योंकि निर्मल अंतः करण वाले भगवान् के भक्त ही भक्तवत्सल भगवान् के स्वभाव को भली प्रकार जानते हैं, इसलिये प्रहलाद की करी हुई स्तुति मंगल रूप और भगवान् में प्रेम उत्पन्न करने वाली अवश्य होगी। जैसे मंत्रो को परमेश्वर का तत्व वर्णन करने में आलस्य नहीं होता, इसी प्रकार आप सरीखे भगवद्भक्तों को भी भगवान् के चरित्र वर्णन करने में आलस्य नहीं होता किंतु उत्साह होता है, इसलिये हम आपसे भगवान् की और परम भक्त प्रहलाद की कथा सुनाने को प्रार्थना करते हैं।

नारद–(प्रसन्न होकर) हे शौनक ! आप धन्य हैं, जिनको भगवान् की कथा में इतना प्रेम है, कि पद पद पर आप मुझे मुकुन्द भगवान् की कथा सुनाने की प्रेरणा करते हैं, भगवान् की कथा प्रश्नकर्ता, वक्ता और श्रोताओं को पवित्र करती है। जैसी जल्दी मन भगवान् की कथा कहने और सुननेसे शुद्ध होता है, इतनी जल्दी यम, नियम,

गणना करते हैं, नहीं तो नहीं करते, क्योंकि एक-बार दास बनाकर फिर उसको कभी नहीं छोड़ते, इसलिये भगवान का भक्त भगवान के समान निष्पाप ही होता है, निष्पाप को डर नहीं लगता, पाप ही भय का कारण है, इसलिये भगवान के भक्त को निष्पाप होने से भय नहीं होता, इसलिये वह ही भगवान के पास जा सकता है। मैंने भगवान का ऐसा उग्र स्वरूप पहिले कभी नहीं देखा और स्वभाव से भीरु हूं इसलिये भगवान से डरती हूं। उनके समीप नहीं जा सकी। प्रहलाद भगवान का सच्चा भक्त है। उसी को भगवान् के पास भेजती हूं, वह ही भगवान के क्रोध को शान्त करेगा। शान्त ही दूसरे को शान्त करसकता है।

देवताओं से ऐसा कहकर जगज्जननी रमा देवी प्रहलाद से इस प्रकार कहने लगीः-

लक्ष्मी हे वत्स! मैं और सब देवता उग्र रूपधारी भगवान के पास जाकर उनका क्रोध शान्त करने को समर्थ नहीं है, तू शान्त स्वभाव वाला भगवान का सच्चा भक्त है, मैं तुझसे प्रार्थना करती हूं कि तू भगवान के पास जाकर अपनी मधुर वाणी से उनको शान्त कर। भगवान का वचन है कि जितने मुझे अपने भक्त प्यारे हैं, उतने न तो मुझे देवता हैं, न लक्ष्मी है न शंकर हैं और न मेरा आत्मा है। बात यह है कि लक्ष्मी, बैकुण्ठ आदि जितना कुछ मेरे पास ऐश्वर्य है वह सब भक्तों का दिया हुआ है, मेरे पास कुछ नहीं है। जिनका दिया हुआ मेरा सब ऐश्वर्य है, उन भक्तों का कहा हुआ मैं कभी टाल नहीं सका किंतु जो कुछ वे कहें वह ही करता हूं, और तो क्या निर्गुण होकर भी भक्तों के वश होकर उनका पुत्र आदि होकर भी उनकी इच्छानुसार अनेक प्रकार की लीलायें करने लगता हूं। हे वत्स! जब अनहोनी बात भी भक्तों के वश होकर भगवान करदेते हैं, तो तेरे कहने से उनके क्रोध का शान्त होजाना कुछ बड़ी बात नहीं है, इसलिये तू भगवान के पास जाकर उनको शान्त कर और साथही हम सबको भी शान्ति दे।

प्रहलाद-(हाथ जोड़कर) हे जगज्जननी! जब आप ईश्वरी और ब्रह्मादिक ईश्वर ही नृसिंह रूप धारी महेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सके, तो मैं अधम जाति में उत्पन्न हुआ मंद बुद्धि बालक भगवान के क्रोध को कैसे शान्त कर सका हूं। नहीं कर सका। फिर भी आप भक्तवत्सला भक्तों की कीर्ति बढाने के लिये मुझ आपके अनुचर को आज्ञा देती हैं, उसको मैं शिर आंखों से करने को तैयार हूं। भगवान भी भाव के भूखे हैं, बड़ी बड़ी सामग्रियों से प्रसन्न नहीं होते और भक्तों की अर्पण करी हुई तुलसी की एक पत्ती से प्रसन्न होजाते हैं, इसलिये टूटी फूटी अपनी वाणी से मैं जगन्नाथ की स्तुति करने का प्रयत्न करता हूं।

हे शौनक! इतना कहकर महा भक्त प्रहलाद उग्रमूर्ति नृकेसरी के पास जा खड़ा हुआ और साष्टांगदंडवत नमस्कार करके उठकर हाथ जोड़कर इस प्रकार अमृत की नदी बहाता हुआ स्तुति करने लगा।

प्रहलाद-हे करुणाकर! हे भूत भावन! मैं आपका बालक हूं, आपकी शरण हूं आपकी स्तुति मैं नहीं कर सका, क्योंकि श्रुति भगवती, जो समस्त अर्थों की प्रकाशक है, वह भी आपके स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकी नेति २ कहकर चुप होजाती है, ऐसे मनवाणी से अगम्य आपकी स्तुति मैं कैसे कर सका हूं। नहीं कर सका हूं। आपकी कृपा से ही मैं आपकी यत्किंचित् महिमा का वर्णन कर

सका हूं। इसलिये आप अपना अभय करने वाला हाथ मेरे सिर पर रखिये और मुझे अपनाइये।

बालक प्रह्लाद के ऐसे विनीत वचन सुनकर देवों के देव कृपा निधान भगवान् क्रोध होने पर भी कृपा से द्रवी भूत होगये, अनन्य शरण अपने भक्त बालक को उन्होंने उठाकर अपनी छाती से लगा-लिया, बहुत देरतक उसके शिरको सूंघा प्यार किया और अपना कर कमल उसके शिर के ऊपर हाथ फेर कर उसे अभय करदिया। भगवान के हाथ के स्पर्श से उसके समस्त पाप जलगये, शीघ्र ही वह भगवान के परमात्म स्वरूप को देखने लगा। भग-वान् के चरण कमल का हृदय में ध्यान करने से उसे परमानन्द प्राप्त हुआ, हृदय आर्द्र होगया, रोमांच खड़े हो आये और आंखों में प्रेम के आंसु भर आये! बड़ी देरतक वह आनन्द के सागर में मग्न रहा, पीछे सावधान होकर एकाग्र मनसे गद्गद वाणी से, हृदय की आखों से भगवान को देखता हुआ इस प्रकार स्तुति करने लगा–

हे देवों के देव! मैं आपकी स्तुति करने के योग्य ही नहीं हूं, तब मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूं। ब्रह्मादिक देवता, मुनि सिद्ध इन सबकी बुद्धि सर्वदा सत्वगुण में स्थित रहती है। आपके गुण अपार हैं। आप अपार गुणवाले की उपरोक्त सर्व देवादि सर्वदा स्तुति करते हैं, परन्तु आजतक वे आप को प्रसन्न करने में समर्थ नहीं हुए और आगे भी न होंगे तब मैं, उग्रजाति में उत्पन्न हुआ हूं, तामसी प्रकृति वाला हूं, आपको कैसे प्रसन्न कर सका हूं। नहीं कर सका। फिर भी मैं ऐसा मानता हूं कि धनसे, कुलसे, रूपसे, तप से, पंडिताई से, तेजसे, प्रभाव से बल से, पराक्रम से, बुद्धि से, योग से कोई आपका आराधन नहीं कर सका किंतु भक्ति से ही आपका आराधन हो सका है। गजेन्द्र में ऊपर के गुणों में से एक भी गुण नहीं था, फिर भी उसने भक्ति से एक कमल का पुष्प आपको अर्पण किया था, उसी से आपने संतुष्ट होकर ग्राह से उसकी रक्षा की थी, इससे सिद्ध होता है कि आप केवल भक्ति से प्रसन्न होते हैं, इसलिये मुझे आशा होती है कि मैं सर्व गुणों से हीन होने पर भी आपकी स्तुति करके आपको प्रसन्न कर सकूंगा। भक्ति बिना आप प्रसन्न नहीं होते, भक्ति से तुरंत ही प्रसन्न होजाते हैं।

हे अरविन्दनाभ! धर्म, सत्य, दम, तप, अमात्सर्य, लज्जा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति, श्रुत और दान, ये बारह लक्षण ब्राह्मण के विद्वानों ने कहे हैं अथवा शम, दम, तप, शौच, शान्ति यानी क्षमा, आर्जव यानी सरलता, विरक्ता यानी वैराग्य ज्ञान, विज्ञान, संतोष, सत्य, आस्तिक्य ये बारह लक्षण ब्राह्मण के हैं। यदि कोई ब्राह्मण इन बारह लक्षणों से युक्त हो, परन्तु आपसे विमुख हो, उस ब्राह्मण से मैं उस श्वपच को श्रेष्ठ मानता हूं जो अपने मनको अपनी वाणी को, अपने प्राणों को आपके अर्पण करदेता है, क्योंकि इस प्रकार श्वपच अपने समस्त कुल को पवित्र करदेता है और कुलका अभिमानी ब्राह्मण अपने को भी पवित्र नहीं कर सका। क्योंकि भक्ति हीन ब्राह्मण के ये समस्त गुण केवल गर्व के लिये ही होते हैं शुद्धि के हेतु नहीं होते, इसलिये अभक्त ब्राह्मण से भक्त श्वपच श्रेष्ठ है।

कोई शंका करे कि क्या भगवान् भी प्राकृत मनुष्य के समान धनादि अर्पण करने से अपना संमान चाहते हैं, तो यह बात नहीं है, क्योंकि आप जगदीश्वर अपने भक्तों से संमान अथवा पूजा

अपने लिये नहीं चाहते किंतु आप तो दर्पण के समान हैं। जैसे जैसा मुख बना कर हम दर्पण के सामने जाते हैं, वैसा ही मुख दर्पण हम को दिखला देता है, इसी प्रकार जो २ सम्मान अथवा पूजा भक्त भगवान् को देता है, वह सब उसी के लिये हो जाते हैं। भाव यह है कि जितना २ सम्मान भगवान् का भक्त करता है, उतना २ उसका सम्मान होता है इसलिये जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार मैं निश्शंक होकर सर्व प्रकार से आप ईश्वर की महिमा वर्णन करता हूं, क्योंकि आप की महिमा वर्णन करने से पापी से पापी भी निष्पाप और अज्ञानी से भी अज्ञानी ज्ञान वाले होजाते हैं। भला! जिस जगन्नाथ की महिमा वर्णन करने का ऐसा प्रताप है, उसकी महिमा कौन नहीं वर्णन करेगा, इसलिये मैं अवश्य ही आपके गुणों का गान करूंगा।

पाठक! प्रहलाद की करी हुई भगवान की स्तुति बहुत ही विस्तार से है और रोचक भी है, उसको आगे के अनुबंध में आपके दृष्टि गोचर करेंगे। यहां तो इतना ही कहकर लेखकी समाप्ति करते हैं।

सु-गाने से भगवत् चरित, मन होता है शुद्ध।
शुचि मन वाला शीघ्र ही, हो जाता है बुद्ध॥
होजाता है बुद्ध, भक्त हरि गुण गण गाकर।
मोह शोक भय हीन, विष्णु पद अक्षय पाकर॥
भोला! मन हो शुद्ध, विष्णु मनमें आने से।
वाणी होय पवित्र, विष्णु गुण गाने से॥

॥ आओ ॥

(रचयिता श्री गोपीनाथ कुल श्रेष्ठ खैरगढ़)

संकुचित हृदय कंज-कलिका को-शीघ्र खिलाने को आओ।
रवि मयूख सम, निशि अन्धियारी घोर-मिटाने को आओ॥ १॥
प्रेम तृषित चित्त चातक घन! नीर पिलाने को आओ।
मुरझानी अभिलाष लता उसमें-हरियाने को आओ॥ २॥
काम-अमर्ष-मोह मद-मत्सर-दूर भगाने को आओ।
क्षमा-शौच-सन्तोष शील-शुचि-ज्ञान बढ़ाने को आओ॥ ३॥
माया जनित-क्षणिक-सुखों का-भास हटाने को आओ।
सच्चे सुख का मार्ग भ्रान्त मन को दिखलाने को आओ॥ ४॥
आडम्बर में लीन दम्भित मन सुहं बनाने को आओ।
सब सनेही जानि दया-निधि जन अपनाने को आओ॥ ५॥

मृत्यु

[ले० यमुना प्रसाद श्रीवास्तव नरसिंह पुर]

शरीर के त्याग को मृत्यु कहते हैं। यह भी एक कल्पित अवस्था है। इस अवस्था में जीवन का परिवर्त्तन होता है जीव का नहीं। जीव तो अजर, अमर और अविनाशी है।–

'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुख राशी॥'

गीतायाम्

ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः।

वही जीवों का जीव, आत्मा की आत्मा और प्राणों का प्राण है।

'प्राण प्राण के जीवन जी के।'

और भीः–

प्राण भये कान्हमय, कान्ह भये प्राण मय।
हिय में न जान परे कान्ह है कि प्राण है॥

उनके बिना सारा संसार फीका पड़जाता है।

श्री वल्लभ नख-चंद्र-छटा बिनु,
सब जग मांझ अन्धेरो।

प्राण मुख्यतः पांच हैं। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। प्राण-हृदय में, अपान-गुदा में, समान-नाभि में, उदान-कंठ में, और व्यान-संपूर्ण शरीर में रहते हैं। इनके संचलक काल-भगवान हैं। उन्होंने कहा भी है।–

बनाई मैंने भूल भलैयां,
उसी में सबको भुला रहा हूं।
तमाम दुनिया है खेल मेरा,
उसी में सबको खिला रहा हूं॥
जो हैं फ सदमें भले-बुरे के,
हो कौन तुम और कहां से आये?
खुशी है मेरी है खेल मेरा,
बना बना कर मिटा रहा हूं॥
कहीं तो शादी के घर चरे हैं,
कहीं है गोरो कफन की बारी॥
किसी को देखो हंसा रहा हूं,
किसी को गम से रुला रहा हूं॥

वे ही सर्व-शक्तिमान् और सर्व-व्यापी भगवान हैं। देखिये! वे क्या कहते हैं।

घट घट में देखलो तुम सुन्दर स्वरूप मेरा।
पहचान लो अगर तुम सुन्दर स्वरूप मेरा॥
मैं आप गंध बनकर मिट्टी में मिल गया हूं
रसरूप है सलिल में सुन्दर स्वरूप मेरा॥
चमकता हूं मैं अनल में क्या तेज रूप धरकर
सुस्पर्श है अनिल में सुन्दर स्वरूप मेरा॥
हूं शब्द रूप मैं ही आकाश में विचरता
विरला ही देख पाता सुन्दर स्वरूप मेरा॥
चाहो जो मुझसे मिलना तो मेट दो खुदी को
होजायगा 'खुदरा' सुन्दर स्वरूप मेरा॥

वे किसी की उपेक्षा नहीं करते। उनके सामने राजा-रंक, स्त्री-पुरुष, धर्मात्मा-पापात्मा, जलचर-थलचर-नभचर आदि सबही एक खेत की मूली हैं।–

"वे सब कहा मरदन वे करहर खाक।"

भावार्थ

चाहे नकराब करो चाहे धूप में,
दोनों में कुछ अन्तर नहीं॥

वे सबों को एकही लकड़ी से हांकने वाले हैं। उनका हिसाब सब धान बाईस पसेरी है। कोई अच्छा हो या बुरा वे किसी के साथ रियायत करना तो जानते ही नहीं। उन्हे किसी पर मोह ममता नहीं। वे तो केवल अपना काम चाहते हैं और उसे वे बड़ी खूबी के साथ करते हैं। किसी ने कहा भी है।–

वह रहा है भावना, वह सब सब्गो कुछ भी नहीं
पीस दूंगा एक पल में वहां कुछ भी नहीं॥

वे कभी धोखे बाजी नहीं करते बल्कि हमही उनकी उपेक्षा करते हैं और अपनी काया पलट होने से असावधान रहते हैं। श्री शंकराचार्य जी ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है और कहा है।

माता नास्ति, पिता नास्ति, नास्ति बंधु सहोदरः।
अर्थं नास्ति गृहं नास्ति, तस्माद् जाग्रत जाग्रत॥
आशया बध्यते लोको कर्मणा बहु चिन्तया।
आयु क्षीणं न जानाति, तस्मात् जाग्रत जाग्रत॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः।
ज्ञानरत्नापहाराय तस्मात् जाग्रत जाग्रत॥
जन्म दुःखं, जरा दुःखं, जाया दुःखं पुनः पुनः।
संसार सागरं दुःखं, तस्मात् जाग्रत जाग्रत॥

काल भगवान ३०-४० वर्ष पहिले ही बुढ़ापा भेजकर अपना पहिला इश्तहार जारी करदेते हैं।

श्रवन समीप भये सित केशा,
मनहुं चौथपन अस उपदेशा॥

और भीः–

सब दिन गये विषय के हेत।
तीनों पन ऐसे ही बीते केश भये सिर सेत।
आंखिन अंध श्रवण नहीं सुनियत थाके चरन समेत॥
गंगाजल तज पियत कूपजल हरितज भूत अरु प्रेत॥
'राम' नाम बिन क्यों छूटेगो चन्द्र गहे ज्यों केत॥
'सूरदास' कछु खरच न लागत 'राम'-नाम मुखलेत॥

और भीः–

अंगं गलितं पलितं मुंडं दशन विहीनं जातं तुंडम्।
सौधे पाति गृहं खादइं तदपि न मुंचत्याशा पिंडम्॥
भज गोविंदं, भज गोविंदं भज गोविंदं मूढ मते॥

दूसरा इश्तहार दो वर्ष पहिले, और तीसरा इश्तहार एक वर्ष पहिले जारी करते हैं। उनका चौथा इश्तहार छःमास पेश्तर, फिर छःमास पेश्तर, फिर ६ दिन पूर्व, फिर ७ दिन, २ दिन, १ दिन पूर्व जारी होता है। इसके पश्चात् अंत में पांच घड़ी फिर ८ घड़ी पूर्व सूचना मिलती है।

चंद्र चलावे दिवस को रात चलावे सूर।
जो साधन ऐसा करे उमर होय भरपूर॥
रात चले सुर चंद्रमा दिनको सूरज चाल।
एक महीना यों चले 'छठे' महीना काल॥
तीन रात अरु तीन दिन चले ताव आकाश।
'एक बरस' का यार है फेर काल विश्वास॥
एक मास लो रैन दिन भान दाहिने होय।
'चरन दास' यों कहत हैं नर जीवे 'दिन दोय'॥
नाड़ी जो सुखमनि चले पांच घड़ी ठहराय।
'पांच घड़ी' सुखमनि चले तबही नर मर जाय॥
नहीं चन्द्र, नहीं सूर है, नहीं सुखमना चाल।
मुख सेती स्वांसा चले 'घड़ी चार में काल॥

जिनका मरन-काल निकट आजाता है उन्हें बुझे हुये दीपक की गन्ध नहीं आती, वे अपने हितचिन्तकों का कहना नहीं सुनते और उन्हें अरुन्धती का तारा भी नजर नहीं आता।

'दीप निर्वाण गन्धञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः॥'

इस प्रकार सूचना पर सूचना मिलने से भी हमारे कान पर जूं तक नहीं रेंगती। तब क्या आप यह चाहते हैं। कि काल भगवान् गली २ ढोल बजाकर मुनादी कराते फिरें। आपको यह मालूम है कि प्रत्येक प्राणी अकेला आता है और अकेला ही जाता है। बस! वे भी नियम के अनुसार अकेले एक ही प्राणी को सूचना देते हैं। परन्तु उस पर कोई ध्यान नहीं देता। सब अपने माया जाल में उलझे रहते हैं।

'उलझे मायाजाल में मूढ़ कुटुम्ब समेत।
आया है दिन अन्त का, अब तो चेत अचेत॥
जीवन पूरा हो लिया अटका अन्तिम काल।
पकड़ी चोटी काल ने अब न बचेगा लाल॥'

और भीः—

'बैठा रहे सो बानिया, ठाढ़ रहे सो ग्वाल।
जागत रहे सो पाहरू, तिन्हें खाया काल॥'

हमारे सामने सैंकड़ों आदमी प्रतिदिन मरते चले जाते हैं उस पर भी हम को विश्वास नहीं होता कि हम भी एक दिन मरेंगे। यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। काम और क्रोध का आधिपत्य तथा ईर्षा, द्वेष, हिंसा, लोभ आदि का प्रभुत्व देख कर कौन कह सकता है कि मनुष्य को अपने मरण-काल की भी चिन्ता रहती है। यदि मनुष्य को इस बात की चिन्ता होती तो आज ही यह पृथ्वी स्वर्ग धाम बन जाती। ये लोग जो मरते हैं परलोक जाने वाले यात्री हैं और जो जन्म लेते हैं, परलोक से लौटे हुये आगामी हैं। इस प्रकार यात्रियों का आना जाना दिन रात लगा रहता हैः—

'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं।
पुनरपि जननी जठरे शयनम्॥'

मृत्यु अनिवार्य है। अनिवार्य विषय का विस्मृत हो जाना बड़े आश्चर्य की बात हैः—

फिर मृत्यु भी तो डंका बजाकर सचेत करती रहती है।

'डंका कूच का बज रहा मुसाफिर! जागो रे भाई।
देखो! लाद चले पन्थी सब, तुम क्यों रहे सुस्ताई॥
जब चलना ही निश्चय तो लेवे क्यों न लदाई।
हरिश्चन्द्र! हरिपद बिनु, नहिं तो रहि जैहो मुंह बाई॥'

और भीः—

'मैं आगई, महाशय! खोलो किवाड़ खोलो।
होकर नितान्त निर्भय, खोलो किवाड़ खोलो॥
जीवन के दीप का अब, सब तेल चुक गया है।
हो भी चुका सवेरा, खोलो किवाड़ खोलो॥
जीवन के वर्ष सारे तारों में छिप गये हैं।
नभ हो चुका है फीका, खोलो किवाड़ खोलो॥
मुश्की दवात से है जीवन की रोशनाई।
चलता न अब कलम है, खोलो किवाड़ खोलो॥
जो कुछ भी लिख हो। उसमें है बन्द सो।
हंस का ग्रह तो घर में, खोलो किवाड़ खोलो॥'

और भीः—

हो होश में, बटोही! खोई है रैन सारी।
सोया बहुत अब बस, चलने की कर तयारी॥
जाना है दूर मंजिल नहिं पास में है संबल।
नहिं धर्म धन का कुछ बल, होगी बड़ी खुवारी॥
जो पास था गंवाया, कुछ और ना कमाया।

यों ही समय बिताया, करजा है सिर पै भारी ॥
है लोभ मोह छाया, जंजाल में फसाया ।
परदेश दिल भाया, घर की सुधि बिसारी ॥
चल देर तू न कर अब संग में समान ले सब ।
पहुँचेगा राम-दर जब, तब होवेगा सुखारी ॥'

शरीर त्याग करते समय जीव को मृत्यु यातना का अधिक कष्ट होता है इसी से जीव मृत्यु का नाम सुनते ही कांपने लगता है। जिन जीवों की स्त्री पुत्रादि पर अधिक ममता होती है वे बहुत हैरान होते हैं।

जगत में जीव हुआ हैरान ।
यह तन मेरा, यह धन, मेरा, यह है मेरा नाम ॥ १ ॥
यह स्त्री यह बालक, यह कुल मेरा, यह है धाम ।
ये बन्धु अरु मित्र हैं मेरे, यह है मेरा ग्राम ॥ २ ॥
मैं धनाढ्य जनाढ्य जगत् में कौन है मेरे समान ।
मैं ईश्वर हूं, भोग विलास, सिद्ध और बलवान ॥ ३ ॥
आज शत्रु को करके पराजित, जग फैलाया नाम ।
सब शत्रुन को वश करके फिर हूंगा पूरण काम ॥ ४ ॥
मिथ्या है ममता संसार ममता भूलहि मान ।
'माधव' फकीर कृष्ण की सेवा कर देवत मन दान ॥ ५

परन्तु यमदूत भी उन्हें घेर लेते हैं और विकट नाद करके बड़ा कोलाहल मचाते हैं:-

'कूच (नक्का) फिरे जगत् में कैसा नाता रे ।
मात कहे यह पुत्र हमारा, बहिन कहे बिर मेरा ॥
भाई कहे यह भुजा हमारी, नारि कहे नर मेरा ॥
पेट पकरि के माता रोवे, बाँह पकर के भाई ।
लपटि झपटि के तिरिया रोवे, हंस अकेला जाई ॥
घर की तिरिया रोवन लागी ढूंढि फिरी चहुं देशा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो छोड़ो जग की आशा ॥'

इस प्रकार रोते, धोते और विलाप करते हुए समय व्यतीत हो जाता है। प्राणी के मुंह से कफ और ओष्ठों से लार बहने लगती है और वह हिचकियां ले ले कर श्वांस भरने लगता है। उसके नेत्र चढ़ जाते हैं और उसकी पुतलियां उलट जाती हैं।

'पिरान-राम जब निकसन लागे ।
उलट गई दोऊ नैन पुतरियां ॥

भीतरी कपाट खुल जाते हैं। दृष्टि दिव्य हो जाती है। जीवन में किये हुये पाप उसके सामने आते हैं! उन्हें देख देख कर वह बहुत दुखी होता है और उनके परिणाम का विचार कर बहुत पछताता है और कहता है कि न जाने इन पाप कर्मों के लिये कितनी २ भीषण यातनायें सहनी पड़ेंगी। परन्तु अब पछताने से होता ही क्या है! किसी ने कहा भी है:-

'अगले दिन पाछे गये, हरि से किया न हेत ।
अब पछताया क्या करे चिड़िया चुग गई खेत ॥

किसी २ का मस्तिष्क तक विकृत हो जाता है और वह सन्निपात में भर कर अपने पापों का भाण्डा फोड़ ही कर देता है। इसके पश्चात् यम के दूत सामने आते हैं। वे बड़े भयंकर होते हैं:-

'यम दूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ विकृत लोचन ।
तद्दर्शना यस्त हृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥'

भावार्थ

भयंकर क्रोध रखने वाले यमदूतों को देखकर और उनके भय से व्याकुल हो कर प्राणी मलमूत्र तक त्याग कर देता है। वे भयंकर मूर्ति धारण कर प्राणी को डराते हैं और यमदण्ड से पीटते हुये उसे नरक की ओर खींच ले जाते हैं।

यमदूतों के इस व्यवहार से प्राणी दुखी हो कर चीत्कार करता और बेहोश हो जाता है।

भगवान् के भक्तों को मृत्यु यातना का ऐसा कोई कष्ट नहीं होता। ज्योतिष्मती आकृतियां उन के सामने आकर रहती हैं। इसलिये ! भगवान् के भक्त इसे ईश्वराज्ञा समझ कर उनका स्वागत करते हैं और महामंत्र 'ओम का' जप करते हुये अपने बन्धु बान्धव और इष्ट मित्रों से विदा होते हैं और ऐसे प्रसन्नता से प्रदान करते हैं। मानों अपने घर ही जा रहे हैं। वस्तुतः बात भी यही है। अनन्तर ज्योतिष्मती आकृतियां, सूर्य की रश्मियों द्वारा उन्हें दिव्य लोक में ले जाती हैं और वहां उनका उचित सत्कार कर पूजन करती हैं। भगवान् के भक्तों अथवा पुण्यात्मा पुरुषों का यही दिव्यलोक गमन है। उस समय उन्हें विमान और देवताओं के दर्शन भी होते हैं। और यदि इच्छा होती है तो दिव्य दृष्टि के फल स्वरूप उन्हें हृदय के भीतर भगवान् के दर्शन भी हो जाते हैं। मनुष्य का शरीर दुर्लभ है। उसको सार्थक बनाना हमारा धर्म है।

'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा'।

उसे वृथा नाश नहीं करना चाहिये:-

'मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य वेदशास्त्राण्यधीत्य च।
बध्यते यदि संसारे को विमुच्येत बन्धनात् ॥'

भावार्थ

मनुष्य का दुर्लभ शरीर पाकर और वेद तथा शास्त्रों को जान कर भी यदि मनुष्य बन्धन में पड़ा रहेगा तो फिर बन्धन से मुक्ति होवेगा ही कौन ? क्या वे मूर्ख लोग मुक्ति होवेंगे जिन्हें कुछ ज्ञान ही नहीं है।

इसलिये ऐसा मरना चाहिये जिससे फिर मरना अथवा जन्म धारण करना न पड़े।

'ऐसा मरना मरो संत भाई ! बहुरि जन्म नहिं आना रे।
बहुरि जन्म बहु देहा, नर देही दुर्लभ है रे ॥
आवागमन मत कीजे रे मन ! फेर जन्म मत लीजे रे ॥
जमराज स लड़ो लड़ाई। सन्मुख लड़ो अकेला रे ॥
किसी के दास्दास मत होना ! हरि चरण छिप जाओ रे ॥
छिप जाओ रे मना ! हरि-चरणन छिप जाओ रे।

भक्ति के प्रिय पाठको ! मृत्यु की यातना बड़ी भयंकर है। उससे बचने का केवल एक उपाय है और वह यह है:-

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥'

भावार्थ

'ॐ' इस एक अक्षर ब्रह्म का जप तथा मेरा स्मरण करते हुये जो शरीर छोड़ता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

और भी:-

'ओमित्ये काक्षरं ब्रह्म, ओमित्येकाक्षरं परम्।
ओमित्ये काक्षरं ज्ञात्वा, यो यदिच्छति तस्य तत् ॥'

भावार्थ

'ॐ' यही एक अक्षर ब्रह्म है। यही एक अक्षर परमगति का देने वाला है। जो इसका जप करते हैं वे मन वाञ्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं।

श्री शुकदेव जी ने भी राजा परिक्षित को यही उपदेश दिया था:-

'अन्ते नारायण स्मृतिः'

भावार्थ

अन्त समय में 'नारायण' का स्मरण करना ही लाभकारी होता है।

फिर भगवान् ने भी तो कहा है:-

हमें जो प्यार करते हैं। हमारे भी वे प्यारे हैं ॥
सदा हम उनसे हारे हैं। हमारे जो सहारे हैं ॥

इसलिये:-'अब विलंब मत कीजिये भज लीजे रघुवीर ॥

बस ! अब बोलिये:-

भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्द कन्द वृन्दावन विहारी की जय ! जय !! जय !!!

* मन की गति *

कुण्डलिया छंद

(रचयिता श्री लक्ष्मीप्रसाद मिश्री 'रमा')

मनकी गति जिन हाथ है, धन्य 'रमा' वह लोग।
बाहर तन है भोग इत, भीतर जागत जोग॥
भीतर जागत जोग, धर्म की कथा सुहावै।
संत साधुको कों, छुन कबहूं नहीं भावै॥
तन उपवन घर मांहि, नहीं इच्छा है धनकी।
करुणा का उर राज, हाथ जिनके गति 'मनकी'॥ १॥

सम्राट् अशोक वर्धन

गतांक से आगे

[ले० मधुमङ्गल श्री मिश्र बी० ए०]

लेख कला का पर्याप्त प्रचार न रहने के कारण धार्मिक सिद्धान्त कण्ठ रक्खे जाते थे। ३०० वर्ष के कालमें सिद्धान्तों में पाठान्तर आगया था। उन्हें लिपिबद्ध कर प्रामाणिकता देने के लिये महाराज ने दूर २ से वृद्ध स्थविरों को बुलवा। और विद्वानों के मतानुसार प्राचीन सिद्धान्तों को पाली भाषा में लिपिबद्ध कराके परिवर्तन शील पदों को स्थिरता दी। ऐसी एक और सभा ३०० वर्ष पश्चात् कनिष्क ने एकत्रित की। और सिद्धान्त संस्कृत में लिपिबद्ध हुए।

अपने विस्तृत साम्राज्य में आवागमन के मार्ग नदियों के पुल विश्राम स्थान तथा धर्मशालाएं आदि थीं। पथिकों के भोजन के लिये खेत और उद्यान तथा जलचर जीवों के लिये जलमें भोज्य सामग्री डाली जाने का तथा चिकित्सालय विद्यालय आदि का भी प्रबन्ध था।

श्री महाराज अशोक वर्धन भारत के सबसे बड़े चक्रवर्ती शासक थे। विन्सेंट स्मिथ के मत से भूमण्डल पर इनसे बड़ा शासक राजा अबतक कोई न हुआ। विस्तृत भूमि पर अधिकार के अति-

रिक प्रबन्ध शासन व्यवस्था की योग्यता प्रशंसनीय थी। सुयोग्य शासक के अतिरिक्त वे स्वयं दयालु और धार्मिक थे। प्रजा को धर्म में प्रवृत्त करने की चेष्टा में आजीवन श्रद्धा पूर्वक लगे रहे। और विदेशियों की भलाई के के लिये जहां उनका शासन न था वहां भी प्रचारक उपदेशक भेजे। अपने काल की जनता के अतिरिक्त भावी जनता को धार्मिक सिद्धान्त सिखाने के लिये शिला लेख गिरिलेख स्तम्भलेख आदि छोड़ गये। ऐसे महापुरुष साधु शासक नृपति चूड़ामणि की जो प्रशंसा की जाय सब थोड़ी है।

रूस और साइबेरिया की विस्तृत भूमि पर जारों का शासन रहा, पर ये देश समृद्ध न थे और निर्जन प्राय हैं। अशोक के समान बड़े और धार्मिक राजा की भारतभूमि में वह ख्याति और प्रसिद्ध नहीं है जो अर्जुन अकबर आदि की है। कारण यह जान पड़ता है कि वे बौद्ध थे और बौद्ध धर्म भारत से चिरकाल से लुप्तप्राय होगया। फिर भी गिरिलिपि शिला लेख स्तम्भ आदि के रूप में उनसे अधिक अमर स्थिति भारत में किसी की हो नहीं सकती। अशोक यद्यपि न जन्मे, शासन किया, धार्मिक उपदेश दिये और चले गये। हमें भी उनसे सीखना चाहिये। ऐसा आचरण करें कि दूसरे जीवों को तनिक भी पीड़ा न पहुंचे। और भगवान को जीते जागते चलते भर में स्मरण करलें।

मन पछितै है अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु कर्म वचन अरु हियते।
सहस बाहु दस बदन आदि नृप बचे न काल बलीते॥
हम हम करि धन धाम संवारे अन्त चले उठि रीते।
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सब हीते॥
अन्तहु तोंहि तजैंगे पामर तू न तजै अबहीते।
अब नाथहिं अनुराग जाग जड़ त्यागु दुरासा जीतें॥
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुं विषय भोग बहु घीतें॥

राम

[ले० श्री गोविन्द राम कुशक]

हे राम! तेरा पता नहीं है "कि तेरा नियत स्थान कहां है" प्रजा राम राम ईश्वर ईश्वर अल्ला आदि नामों से स्मरण करती है।

तेरी चरचा यहां के जबानों पै है,
तेरा शोर जमाने के कानों में है।
मगर आंखों से देखा है परदा नशीं,
कहीं तू न मिला तेरा दर न मिला।
कोई रहने का तेरा मुकाम भी है,
कोई मिलने का तेरा निशान भी है॥
तुझे देखा इधर तो उधर न मिला,

तुझे ढूंढा दूधर तो दूधर न मिला ॥
और बिन पग चले सुने बिन काना,
कर बिन कर्म करे विध नाना ॥

हिंदू तुझे मंन्दिर में बताते हैं और मुसलमान मसजिद में पुकारते हैं कोई द्वारिका आदि तीर्थों में खोज लगाते हैं। मुसलमान काबे में ही असली धाम बतलाते हैं बहुत से अपढ मनुष्य तुझे आकाशी कहते हैं। गांव में बहुधा देखा जाता है कि जब वर्षा नहीं होती तो ऊपर को हाथ जोड कर कहते हैं " हे राम मेंह बरसा" कोई निराकार बतलाता है कोई साकार के गुण गाता है। इन्हीं भेद भावों में हिंदू मुसलमान व सनातन समाज के विवाद की पाटी बनाए हुए हैं। हाय अज्ञान तेरा क्या कहना है।"बगल में छोरा और घरमें ढंडोरा" ईश्वर अपने अंदर है और ढून्ढते हैं बाहर। जैसे मक्खन दूध में और आकर्षण शक्ति मिकनातीस में दृष्टि गोचर है। इसी प्रकार ईश्वर सब जगह व्यापक है। ईश्वर किसी नियत स्थान पर डेरे लगाए नहीं है।

कुछ घड़े पानी भर कर रखदिए जावें "तो तो प्रत्येक में सूर्य का प्रतिबिम्ब एक जैसा होगा, परन्तु घड़े पृथक २ होंगे, प्रतिबिम्ब उसी एक सूर्य का एक ही रुप में होगा "जैसे खांड का चूहा बिल्ला मुंह में डालो जाइका है खांड काहै। खांड के भिन्न२ रूप हैं परन्तु खिलौने को तोड़ा खांड ही रह गई 'साहब को टोप समेत तोड़ा तो बाकी खांड' क्या खांड भी टूटी ? नहीं व तो खांड ही रही 'टूटा क्या ? नाम और रूप' खिलौनों के नाम और रूप मिट गए 'परन्तु खांड उसी प्रकार रही' सारांश यह है कि खांड की तरह ईश्वर हरजगह व्यापक है परन्तु नाम और रूप मिथ्र है।

अथवा बहुतेन किज्ञातेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत ॥ गीता अ० १०

हे अर्जुन और अधिक कहना व्यर्थ है तुम इतना ही जान लो कि एक अंश से मैं इस समस्त जगत में व्यापक हूं इसी प्रकार सूर्य रूपी परमात्मा का 'प्रतिबिम्ब है आत्मा' जो पंच तत्व के घड़े रूपी पुतले के अंदर व्यापक है 'अगर शरीर नाश होजावे तो आत्मा नाश नहीं हो सकता' जैसे खांड के खिलौने आदि टूटने से खांड नहीं टूटी भगवान कृष्ण ने गीता में यह श्लोक अर्जुन को मोह के समय में सुनाया है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योयमदाह्यो। मक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्य सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥
गीता अध्याय २ श्लोक २२

न आत्मा को शस्त्र काट सकता है न आग जला सकती है न पानी भिगो सकता है न ही कट सकती है न जल सकती है न भीग या गल सकती है न सूख सकती है यह अविनाशी स्थिर और अचल है अब इस पर यह प्रश्न उठ सकता है कि आत्मा जब हमारे हृदय के अन्दर व्यापक है तो वह दीखती क्यों नहीं। इसका उत्तर यह है वह आत्मा लालटैन के शोला की समान है परन्तु जब चिमनी शुद्ध न हो तो वह किसी को दृष्टि गोचर न होता। परन्तु "शोला" उसी तेजी से उस के अन्दर जल रहा है जैसा कि स्वच्छ लालटैन के अन्दर जब चिमनी को साफ करोगे तो वह शोला चिमनी से बाहर प्रकाश देगा तदनुसार हमारे चिमनी रूपी हृदयपर स्याही रूपी अज्ञान (काम क्रोध लोभ मोह आदि) का परदा पड़ा हुआ है। जब तक वह शुद्ध

न होगा। आप को आत्मा के दर्शन नहीं होंगे। आत्मा का प्रकाश प्रत्येक मनुष्य के अंन्दर उसी तेजी से हो रहा है। जितना कि एक ब्रह्मज्ञानी महात्मा के अंदर अर्थात् वह विष्णु भगवान क्षीर सागर रूपी हृदय में शेष शय्या पर विराज मान हैं।

दूसरा प्रश्न इस में यह उठ सकता है कि भगवान ने किसी किसी को ब्राह्मण के रूप में किसी को शाह सांमलिया के भेष में कभी चतुर भुजी रूप में दर्शन दिये हैं। हजरत मूसा को रोशनी के दरशन हुए इस का क्या कारण है जब ईश्वर निराकार है तो निराकार वस्तु किस प्रकार साकार हो सकती है 'उत्तर' छोटा उदाहरण है कि आप को यह तो ज्ञात होगा कि प्रकाश का कोई रूप नहीं हैं परन्तु स्टेशन के सिगनल पर जब हर प्रकार का प्रकाश देखते हो, तो कहते हो कि कई प्रकार का उजाला हो रहा है। हरा, नीला पीला आदि जैसा शीशा होता है वैसा ही रोशनी का रूप होता है नीले काच में नीली और हरे में हरी, रोशनी तो एक ही प्रकार की है परन्तु काच से भिन्न २ हो जाती है। महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी ने चौपाई में कहा है:-

जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

यह उस समय की चौपाई है जिस समय धनुष यज्ञ होरहा था। रामचन्द्र जी को सर्व सभागण भिन्न २ रूप में देख रहे थे, सीता जी को पति और रावण को शत्रु और महात्माओं को भगवान रूप में दिखाई दे रहे थे अर्थात् जैसी जिस की भावना थी उसी रूप में दिखाई दे रहे थे।

आपने कभी बाइस कोप या मैजक लालटरैन का तमाशा देखा होगा, 'उसके यन्त्र के भीतर प्रकाश है' बाहर परदे पर चित्र दिखाई देते हैं। 'क्या यह चित्र सचमुच परदे पर ही चल रहीं हैं नहीं कदापि नहीं' चित्र तो उस मशीन के भीतर है यह तो उनका प्रतिबिम्ब (साया) है जैसा प्लेट (pliat) लगाया जाता है वैसे ही चित्र परदे पर खेल करते हैं।

इसी प्रकार प्लेट रूपी भावना हर समय मनुष्य के प्रकाश रूपी आत्मा के सामने आती रहती है। उनका प्रतिबिम्ब सन्मुख के परदे संसार पर पड़ता रहता है। 'स्वप्न में आपको रुपये मिल जाते हैं' और उनको समेटते हो। अर्थात् माया का प्लेट चढ जाता है कभी आपको सिंह व सर्प आदि दिखाई देते हैं और आपको भक्षण करने दौडते है। यह भय है अर्थात् जैसे विचार आपके दिनमें जागत अवस्था में होते हैं वैसे ही विचार के फोटू रातको दिखाई देते हैं नहीं तो वहां केवल आप या चारपाई होती है।

और आप विचार कीजिए रात्री के समय आप कहीं जारहे हैं 'तो डर तो आपके हृदय में है।' परन्तु आपको ढाक आदि वृक्ष आपको भूत दिखाई देता है अर्थात् वह भूत बाहर नहीं है भीतर है 'एक उदाहरण है कि एक मनुष्य एक दिन कहीं जा रहा था, तो उसके मार्ग में एक पीपल का वृक्ष पड़ता था किसी मनुष्य ने उसे बतलाया था कि अमुक पीपल पर भूत रहता है। जब वह रातको गया तो पीपल के समीप उसको भय उतपन्न हुआ। और वह भीतर का भीतर समति आकर खड़ा होगया। और वह भयभीत होकर नगर में आया। उसी नगर में एक विद्वान था उसने यह अभिप्राय समझ कर उस मनुष्य से कहा कि तुम जब जाओ तो अपना एक हाथ काला करके जाना और जब वह

सन्मुख आवे तो उसकी छाती में हाथ मारना तो वह भूत शीघ्र भाग जावेगा उसने ऐसा ही किया जब वह भूत सन्मुख आया तो उसने साहस करके यह काला हाथ छाती में मारा जब लौटकर नगर में आया तो वह स्याही उसकी छाती में ही लागी थी, अर्थात् उसने भूत के बदले अपनी छाती में हाथ मारा। इसी प्रकार तमाम बातें हृदय की भावना पर हैं बाहर कुछ नहीं सफेद परदा है।

इसी प्रकार जिसकी भावना भूत की है उसको भूत दिखाई देंगे और जिसकी भावना देवी आदि देवताओं में है उसको देवता के दर्शन होंगे और जिनकी भावना ईसा व हजरत मौहम्द साहब में है। उनको इन्हीं के दर्शन होंगे। और जो राम कृष्ण की भावना रखते है उनको मोर मुकट वाले पीताम्बर ओढ़े या जिस भाव से दर्शन मांगोगे अवश्य होंगे। अब आप को विदित होगया कि बाइस्कोप में जिस प्रकार एक प्रकाश के बहुत से रूप प्लेट द्वारा बदल जाते हैं इसी प्रकार मनुष्य की आत्मा के प्रकाश में भावना (प्लेट) के अनुसार बहुत से रूप बदल जाते है। भूत व शिव व देवी सब कुछ वही है।

मनुष्य जब मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसको जीवित अवस्था के पाप सन्मुख आते हैं। जिनको वह यम के दूत बतलाता है। "तो वह सम्मुख आकर नाचते हैं।" तो इस अवस्था में मनुष्य रोता है। नहीं तो कोई दूत बाहर से नहीं आते सब कुछ भीतर से होता है।

अब देखिए जिन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों को मार रक्खा है, और जिनका केवल भगवत् पर विश्वास है तो उनकी भावनायें इस प्रकार के कौतुक दिखाती हैं द्रौपदी का चीर खींचा गया, तो द्रौपदी ने यह प्रार्थना की, कि हे भगवन मेरी सभा में लाज रख। अर्थात् द्रौपदी की आत्मा पर इस बातका प्लेट (भावना) चढ रहा था कि भगवान् चीरके रूपमें प्रगट हो और मेरा चीर बढ जावे कि दुष्ट दुशासन से न खिचे फिर ऐसा ही हुआ। भगवान चीर में प्रगट हुए, भक्त का ताप हरण कर लिया।

नरसी महता जो भगवद्भक्त थे। उनका विश्वास सदैव भगवान् पर था। उनको अपनी बहन के यहां भात भरना था। परन्तु उनके पास कुछ न था, क्योंकि जो कुछ कमाते थे भगवत् के कार्य में व्यय करते थे।

ईश्वर उसकी हार्दिक बात को समझ गए। और भगवान स्वयं सामल शाह बनकर बहन का भात भरा गए।

एक महात्मा ने भगवान् के लिए भोजन बनाया, और भगवान् का भोग लगाकर भीतर इस प्रेम में चले गए कि भगवान् किसी रूप में आकर इस भोग को स्वीकार करलें। तब भगवान् ने कुत्ता का रूप धारण करके उनकी सब रोटी उठाली और लेकर चले। जब महात्मा को सूचित हुआ तो दालकी देगची लेकर दौड़े, कि भगवान् रूखी रोटी किस प्रकार खाओगे दाल और लेते जाओ फिर भगवान ने असली रूप में दर्शन दिए।

इसी प्रकार भगवान् भगतों की इच्छा अनुसार पृथ्वी का भार उतारने को अवतार लेते हैं। जैसे राम अवतार और कृष्ण अवतार तदानुसार हृदय की भावना के अनुसार भगवान मूर्ती में दर्शन देते हैं। अगर मनुष्य के भीतर भगवान् की भावना नहीं है तो कदापि दर्शन नहीं हो सकते चाहे हजार वर्ष तक पत्थर से मूंड मारे चले जाओ।

परन्तु हृदय में प्रेम है तो हर एक वस्तु में भगवान के दर्शन हो सकते हैं, जैसे प्रहलाद को खम्ब में दर्शन हुए थे महात्मा सूरदास जी ने क्या अच्छा कहा है:-

कर छुड़ाकर जात हो निबल जानके मोय ।
हृदय में से जाओगे मर्द बदोंगो तोय ॥

पथिक

[ले० श्री गोविन्द राम शर्मा टीचर कुचक]

हाय पथिक ! तू किस महान् देश का यात्री था ? किस दुर्लभ लक्ष के हेतु तूने प्रयाण किया था धिक् है पतित है। भ्रान्ति से क्षणिक सुख के कारण तू जिस महान् लक्ष से वञ्चित है। कुटिल कण्टक मय देख जिस मार्ग को तूने त्याग दिया है वही यथार्थ पथ है उसी से तुझे पार होना है। यह हरित वाटिका जिसके मार्ग का तूने अवलंब किया है अवश्य कुञ्जमई है। चहुं ओर नाना प्रकार के तरु-लतायें विराज रही हैं। वर्ण वर्ण के सुवासित पुष्प हैं जिनसे होकर त्रिविध समीर मन्द मन्द चारों ओर प्रसारित होकर तद् जन्तुओं के मनको हरण करलेती है। पुष्पाच्छादितलता विटपों में मन्द मन्द मधुलेते हुये भौंरों का गुंजार होरहा है। सुपक्व अम्बु अनार आदि से वृक्ष गर्वित होकर झुके हुये हैं, कोयलें अम्बु रसास्वादन करती हुई कू कू शब्द कर रही हैं। बहु भांति के विहंग अपने कल कल नाद से पथिकों को चैन नहीं लेने देते। कहीं कहीं जलाशय के निकट मयूरों का वृन्द अपने अनुपम दाम्पत्य स्नेह में भूले हुये एवं मधुर स्वर (शब्द) करते हुये प्रकृति नटी का नृत्य दिखाते हैं, कभी कभी जलकरण वायु से मिश्रित हो इस प्रकार बरसती हैं मानो पीयूष ही सिञ्चन हो रहा है, ऐसे समय उस मनोहर वाटिका के मध्य में धवल विशाल भवन से नवयुवतियां अपनी अपनी कामनाओं का संदेशा सुना देवी गौरी की अर्चना से निवृत होकर हाथों में जल के लोटे लिये हुई अति प्रफुल्लित वदन हो गंगातट निकली और पुष्प पत्रादि चढ़ा जननी जाह्नवी की आरती उतारती हैं। तत्पश्चात् वे रमणियां मधुर गान करती हुई उस वाटिका में रमण करती हैं और पथिकों के जन्म को सफल करती हैं।

इस प्रकार भौंरों की गुंजार, मयूरों का नृत्य, त्रिविधि समीर का प्रसरण, कोयलों की कू कू और उस हरित कुंज में उन नव युवतियों के मधुर गीतों ने उस उपवन को अवश्य अमरावती बना दिया है, अथवा आज मानो उस स्थान को रति देवी ने अनंग देव के मिलन हेतु सजाया है। ऐसे स्थान से होकर जिस मार्ग का तूने अवलम्ब किया है वह

निश्चय मनोहर और सुखकारी है परंतु क्षणिक और दुःखान्त है। जो विविध समीर बहती है वह अन्त में अति विषैली है उस विषमयी वायु से पार होना असंभव नहीं तो नितान्त कठिन अवश्य है। नाना प्रकार के सुपक्व फल दिखाई देते हैं वे मन के प्रलोभन हेतु निःसन्देह मधुर और सुस्वाद हैं परन्तु गुण शीघ्र मृत्युकारी है। इनके चखने वाले शतप्रतिशत काल के कराल गाल में प्रवेश करते हैं जो मयूर नृत्य करते हुये दिखाई देते हैं वे जगत के प्रपञ्च और ढोंग का चित्र खींचते हैं। वे अवश्य सुख शोभा की सीमा हैं किन्तु गुणकारी ऐसे हैं कि महा भयंकर काल नागों का क्षण में भक्षण करदेते हैं। जो ललनायें प्रसभ ही मन हरण करती थी वे अराध्य वनदेवियां नहीं है किन्तु इस वेष में काल नागिनियां हैं जो एक दृष्टी मात्र ही से पथिकों के हृदयों को बेध देती हैं। मन्द मन्द पवन झकोरों से जो शीतल जलकणे कभी कभी शरीर को शान्ति देने वाली भासती थी वे वास्तव में अमृत रूप में हलाहल है। उसके संचार से जो दाह गन्तुकों के हृदयों में उत्पन्न होती है वह ज्वालामुखी के मुख पर भी नहीं मिलेगी। ऐसी अवस्था में जो वाटिका तुझे इन्द्रपुरी भासती है जिसको तूने अनंग देव का क्रीड़ास्थल समझ लिया है वह साक्षात् यमपुरी है उस मार्ग से गया हुआ काल के विकराल गाल में जाये बिना नहीं रह सकता।

इस भ्रम से जिस मार्ग का तूने अनुसरण किया है वह सरासर असत्य है क्षणिक है और दुःखदाई है। यह प्रकृति का नियम है कि जो इन्द्रियों के प्रलोभन में आकर ज्वरावस्था में कटु औषधि का त्यागकर मृदु का आस्वादन करना चाहता है तो परिणाम निश्चय बुरा होगा। इस समय तो कटु औषधि ही अमृतमयी प्रकट होगी, जो पथ नीरस भयंकर और भग्नावस्था में दृष्टि गोचर होरहा है उसका अवलम्ब करने से वास्तविकता का पता लग जायगा। केवल दृष्टि मात्र ही से दुर्गम जान त्यागना भूल है प्रारम्भ में यह मार्ग घोर दुर्गम्य अवश्य प्रतीत होता है। कठोर कटीले चट्टानों ऊंचे नीचे कई एक विकट भूधरों से होकर अति संकीर्ण कुटिल पथ से जाना होगा। इतस्ततः नाना हिंसक जन्तु घात लगाये बैठे हैं। कहीं कहीं पर अति कराटकाकीर्ण होने से एक पग बढ़ाना भी कठिन हो जाता है। वृक्षलताओं में भुजंग लटके हुये हैं। कोसों तक जल का नाम नहीं निरन्तर भयंकर मार्ग है। परंतु उत्साह पूर्वक ज्यों ज्यों आगे बढ़ेंगे उतनी ही भयंकरता न्यून होगी। अन्त में यहां तक कि एक सघन हरित वन मिलेगा। पर्वतों से निर्झरित जलस्रोतों का शब्द सुनाई देगा आशा बलवती होगी। उस वन में वृक्षलताओं के नवजात पुष्प पल्लवादि रात्रि दिवा के धुयें से धुंधले और मुरझाये हुये दिखाई देंगे। वहां वायु पवित्र और स्वच्छ मिलेगी अतः बुद्धि सात्विकी होगी। कुछ दूर आगे आगे बढ़कर क्या देखोगे कि एक मनोरम्य पवित्र नगरी सामने है। यह ऋषि आश्रम है। बहुत सुन्दर पर्ण कुटियां बनी हुई हैं। वृक्षों पर वल्कल वस्त्र लटके हुये हैं। हिंगोट की रगड़ से से शिलायें चिकनी होगई हैं। परम पावनी भागीरथी का तट है। सम्पूर्ण पृथ्वी सश्यामला बनी हुई है। चहुं ओर ऋतुराज का राज्य छाया हुआ है। हिरनों के छौने ऋषिबालों के संग सुखसे विचर रहे हैं। दोनो समय ऋषि समूह के वेदोच्चारण से संपूर्ण वन कोलाहलमय होजाता है। अहर्निश भगवत चर्चा हुआ करती है। आबाल

वृद्ध सुख शान्ति से उस परम प्रभु के गुण गान के मद में मस्त हैं। निरन्तर शान्ति का राज्य है। प्रपञ्च का लेश मात्र नहीं। इस पवित्र भूमिके संसर्ग से विचार धारायें पलट जाती हैं। नूतन बुद्धि विवेक का संचार होता है। तत्पश्चात् इस पुण्य भूमि से आगे जगत से न्यारी एक अति मनोहारी वाटिका मिलेगी। वहां जगत का प्रपंच छू तक नहीं गया। उस स्वयं प्रकाशमयी वाटिका को न सूर्य प्रकाशित करता है न चन्द्रमा न अग्नि ही प्रकाशित करता है। उस एक ओं शब्द से नादित शान्तमयी वाटिका में गया हुआ पुनः पीछे लौट कर नहीं आता। यही सच्चा लक्ष है (वही सच्चा मार्ग है)। इति

संस्कृतोक्ति

(अनुवाद पं० नवलकिशोर ब्रह्मचारी भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी)

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां,
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम्।
पापौघः परिधूयतां भव सुखे दोषोऽनु संधीयतां,
आत्मेच्छा व्यवसीयतां निज गृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम्॥

प्रतिदिन वेदादि सच्छास्त्रों का अध्यन करना चाहिये। तथा उनमें कहे हुये कर्मों का सम्यक् रीति से आचरण करना चाहिये। उस कर्म से भगवान् की पूजा करनी चाहिये अर्थात् सम्पूर्ण कार्य ईश्वर निमित्त करे। निष्काम कर्म करना चाहिये। ईश्वरोपासना, श्रवणादि साधनों द्वारा पाप समूह को नष्ट करना चाहिये। सांसारिक सुखों में दोष दृष्टि रखनी चाहिये मैं कौन हूं और कहां से आया हूं तथा आत्मा परमात्मा क्या चीज़ है इत्यादि ज्ञानको जानना चाहिये तथा साधुवृत्ति धारण कर कुटुम्बादि के मोह को त्याग कर एकान्त सेवी बनना चाहिये।

संगः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढा धीयतां।
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु संत्यज्यताम्॥
सद्विद्वानुपसर्पतां प्रतिदिनं तत्पादुके सेव्यताम्।
ब्रह्मैकाक्षर मर्थ्यतां श्रुतिशिरो वाक्यं समाकर्ण्यताम्॥

साधु सज्जन पुरुषों का सत्संग करना चाहिये तथा भगवान में अविचल भक्ति होनी चाहिये। शान्ति सच्चरित्रता को धारण करना चाहिये और सकाम कर्मों का त्याग करना चाहिये ज्ञान चर्चा के हेतु शास्त्रों के ज्ञाता श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषों के पास जाकर तथा उनकी सेवा करे। एकाक्षर ब्रह्म ॐ इसका जप तथा उनका चिन्तन करे। और श्रुति शिर गायत्री आदि वेद के श्रेष्ठ वचनों का श्रवण करे।

वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुति शिरः पक्षः समाश्रीयतां,
दुस्तर्कात् सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनु संधीयताम्।
ब्रह्मैवास्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां,
देहेहं मतिरुज्झतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम्॥

वेदोक्त उत्तमोत्तम मंत्रों को केवल तोता रटाई न कर के अर्थ भी जानना चाहिये तथा वेदोक्त मार्ग का अवलम्बि होना चाहिये। दुस्तर्क वितण्डावाद जिसमें कुछ तत्व न हो ऐसे तर्कवाद से अलग रहकर सच्छास्त्रों का तर्कवाद (ईश्वर साकार है या निराकार, जगत् से भिन्न है या संमिश्रित) करना चाहिये। मैं स्वयं ब्रह्म स्वरूप हूं मेरे और

उसके अस्तित्व में कुछ भेद नहीं है अज्ञान से भूला हुआ हूं इत्यादि चिन्तन करना चाहिये तथा अहंकार का परित्याग करदे। शरीर में अहं भाव न रक्खे अर्थात् शरीर जड़ है तथा चेत्र आत्मा चेतन स्वरूप ऐसा समझे। महान् पुरुषों के संग वाद विवाद न करें कोई शंका हो तो श्रद्धा से पूछ कर निवारण करे।

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां,
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात् प्राप्तेन संतुष्यताम्।
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यतां,
औदासीन्यमभीप्स्यतां जन कृपा नैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्॥

साधक पुरुष को भूख प्यास द्वन्द्व रूप व्याधि का निग्रह करना चाहिये अर्थात् भूख के लिये भिक्षान्न रूप औषध करना चाहिये। उत्तम व्यंजनों की अभिलाषा न करनी चाहिये और यदि संयोग वश प्राप्त होजाय तो भोग लेना चाहिये अर्थात् यदृच्छा लाभ से सन्तुष्ट रहे। शरदी गरमी सहन करनी चाहिये तथा जिस वाणी से कोई प्रयोजन सिद्ध न हो ऐसे वचन उच्चारण न करे। उदासीनता को ग्रहण करना चाहिये तथा जनकृपा व निष्ठुरता को त्याग देना चाहिये।

एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां।
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्॥

प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां।
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम्॥

एकान्त स्थान में बैठकर परतर अर्थात् संसार परे जो ईश्वर है उसका ध्यान लगाना चाहिये। और समाधि योगद्वारा पूर्णात्मा जो सारे विश्व में अधश्चोर्ध्व ऊपर नीचे दायें बायें भगवान् को देखना चाहिये तथा उसी ईश्वर के द्वारा इस जगत् को बाधित समझना चाहिये। (अर्थात् हरिरेव जगत् जगदेव हरिः) यह सारा जगत् भगवान् का विराट् स्वरूप है। तथा जैसे तिलों में तेल है इसी प्रकार भगवान् जगत में है। तीन प्रकार के कर्म होते हैं संचित प्रारब्ध क्रियमाण अतः संचित कर्म को चितिबल (निर्विषय संवेदन) ज्ञान के द्वारा नष्ट करना चाहिये। तथा क्रियमाण कर्मों को निष्काम भाव से करता हुआ उनमें लिपायमान न हो और प्रारब्ध कर्मों का भोग भोगकर अन्त में परब्रह्म आनन्दस्वरूप कैवल्य पद को प्राप्त करना चाहिये जिस स्थान को प्राप्त होकर योगीजन कभी नहीं लौटते हैं। तथा जहां जाकर जीव अपने स्वरूप को जानकर जन्म मरण रूप बन्धन से मुक्त होजाता है। उस स्थान को साधक को प्राप्त करना चाहिये।

प्रेम पन्थ

(रचयित्री श्री व्रजकुमारी प्रभाकर आश्रम)

प्रेम के पंथ प्रवीण चलें नहीं कायर जन भरमाय रहे उत।
मोम तुरंग चढे बिन शीश पुनि पावक में रण रंग मचे जित॥
वार पै वार तलवार की धार "व्रज" वारहि वार दर पाव सहै नित।
वेध सिरीष प्रसून पत्ती परतीति पहाड़ प्रवेश किये उत॥

सच्चा सुख

[ले० श्री शान्ति मंडल छावनी नीमच से प्राप्त]

प्रिय सज्जनो !

हम लोगों को यह शुभ इच्छा उत्पन्न हुई कि जो सच्चा सुख है उसके विषय में बुद्धि अनुसार लिखें। बहुत से महानुभावों ने भौतिक सुख को ही सच्चा सुख मान लिया है। भौतिक सुख संसार सुख को ही कहते हैं। लेकिन प्रिय सज्जनो सच्चा सुखतो केवल ईश्वर भक्ति है। इतना सब कोई जानते हैं कि परमात्मा की कृपा से यह मनुष्य शरीर मिला है जो कि क्षणभंगुर है, इसका नाश होते देर नहीं लगती। यदि मनुष्य शरीर की प्राप्ति होकर भी ईश्वर भक्ति न की तो फिर चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा और हजारों कष्ट उठाने पड़ेंगे इतना समझने पर भी भौतिक सुख ही में अमूल्य शरीर की अवधि को पूरी कर रहे हैं। एक दृष्टान्त है कि:-

एक नेत्रहीन मनुष्य किसी ग्राम में रहता था उस ग्राम के चारों तरफ दिवार बनी हुई थी, ग्राम के बाहर निकलने का एक ही दरवाजा था। कुछ समय व्यतीत होने पर जब कि उस नेत्रहीन मनुष्य का उस ग्राम में उदर पोषण न होने लगा तब उस मनुष्य ने किसी अन्य ग्राम को जाना निश्चय किया, लेकिन उसके नेत्र न थे इस कारण से वह राह न जानता था इसलिये उसने किसी अन्य मनुष्य को ग्राम के बाहर जाने की राह पूछी तो उसने नेत्र हीन मनुष्य को ग्राम के बाहर जाने का रस्ता बतलादिया यानि उस अन्धे मनुष्य का हाथ पकड़ कर उस ग्राम की दीवार पर लगादिया जो कि उस ग्राम के चारों तरफ थी और यह भी कह दिया कि ग्राम के बाहर जाने का केवल एक ही दरवाजा है जबकि चलते २ तुम्हारा हाथ दिवार पर से छुट जावे तो तुम दरवाजे के बाहर निकल जाना लेकिन ईश्वर इच्छा से यह उपाय सफल न हुआ सफल न होने का कारण यह था कि उस नेत्र हीन मनुष्य के शरीर पर खुजली होरही थी जबकि मनुष्य दरवाजे के पास आता तो उसके बदन पर खुजली चलनी शुरु होजाती वह अपने हाथों से खुजली कुचरने लगता कि इतने ही में उस ग्राम का दरवाजा निकल जाता और फिर दिवारउसके हाथ आ जाती विचारा फिर दिवार को पकड़ लेता और चलना शुरु किया इसी प्रकार अनेक चक्कर लगाता रहा।

प्रिय सज्जनो दृष्टान्त तो केवल इतना सा ही है अब इसको मनुष्य शरीर के ऊपर घराते है कृपाया सुनियेः-

उस परमात्मा ने इस संसार रूपी नगर के चारों तरफ चौरासी लक्षयोनी रूपी कोट यानी

दिवार बनाई है और केवल एक मनुष्य ही शरीर रूपी मोक्ष द्वार रखा है। जिस प्रकार उस नेत्र हीन मनुष्य के खुजली चलने के कारण से वह नगर का दरवाज़ा निकल जाता था और वह विचारा अनेक चक्कर लगाते रहा इसी प्रकार मनुष्य विषय रूपी खुजिलियों ही में अपनी उम्र व्यतीत कर रहे हैं। जब कि यह मनुष्य शरीर रूपी मोक्ष द्वार छूट जायगा तो फिर दिवार रूपी चौरासी योनियें हाथ आजावेंगी तब अनेक कष्ट उठाने पड़ेंगे इन योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा तथा जन्म मरण में चक्कर लगाना पड़ेगा।

यदि मनुष्य ने संसार में आकर ईश्वर भक्ति न की तो पशु में और मनुष्य में कुछ भी फरक नहीं पशु तो मरने के बाद अथवा जीवित समय में भी परोपकार करता है। मनुष्य का शरीर मरने के बाद जला दिया जाता है और जीवित समय में भी मनुष्य शरीर से केवल अपवित्र वस्तुयें निकलने के सिवाय कोई भी पवित्र परोपकारी वस्तु नहीं निकलती यदि मनुष्य ने ईश्वर भक्ति न कि तो फिर मनुष्य से पशु ही अच्छा है। किसी ने कहा कि:-

आहार निद्रा भय मैथुनम् च सामान्य मेतत् पशु मान वानम्।
ज्ञानम् नराणामधि को विषशो ज्ञानेन हीनः पशु भिसमानः॥

अहार, निद्र, भय, और मैथुन ये तो पशु में और मनुष्य में बराबर हैं लेकिन केवल ज्ञानही मनुष्य में अधिक है ज्ञानके बिना मनुष्य पशु के समान है।

सथा सक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषय गोचरे।
यत ऐव ब्रह्मणी स्यादै को न मुच्येत बन्धनात॥

जैसे जिवों का चित्त विषयों में आसक्त हो रहा है इसी प्रकार यदि ब्रह्म में हो जावे (ईश्वर में) तब कौन मनुष्य है जो कि इस संसार रूपी बन्धन से न छूटे।

प्रिय सज्जनों! जो धर्म विषय की पुस्तक पढ़ने में आती है उसमें केवल ईश्वर भक्ति ही संसार में सार बतलाई है और सबको असार दिखला दिया है। और चन्द्रकान्त पृथम भाग के द्वितीय प्रवाह में लिखा है कि:-

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
मनश्चेन्न लग्नं हरे रङ्घ्रि पद्मे ततः किंततः किं ततः किं॥

सुन्दर रूपवान शरीर, स्त्री, उत्तम यश, तथा अनेक प्रकार का मेरू समान धन हो, तो भी श्री हरि के चरण कमलों में मन नहीं लगा तो इन सब से क्या है।

स्वामी श्री तुलसीदास ने भी रामायण में कहा है कि:-

चौपाई–नरतनु पाय विषय मन देही।
उलटि सुधाते शठ विषलेही॥

मनुष्य शरीर पाकर भी यदि विषयों में मन दिया तो फिर अमृत को छोड़कर विष (जहर) ग्रहण करता है।

किसी ने और भी कहा है कि:-

जितनी नीत विषयन में उतनी प्रभु में होय।
चला जाय बैकुण्ठ को रोक सके नहीं कोय॥

मनुष्य अपने शरीर, स्त्री पुत्र, धन, इत्यादि का गर्व करता है लेकिन मनुष्य को उचित नहीं कि नाशवान वस्तुओं के प्राप्त होने से गर्व करे क्यों कि मरण समय आता है तब कोई भी साथ नहीं जाता

इन नाशवान वस्तुओं को नीति में भी नाशवान ही बतलाया है।

यौवनं जीवितं चित्तं छाया लक्ष्मीश्च स्वामिता।
चञ्चलानि षडेतानि ज्ञात्वा धर्म रतो भवेत॥

यौवन, जीना, मन, शरीर की छाया, धन

और स्वामिता ये सुही बड़े ही चंचल हैं अर्थात् स्थिर हो कर नहीं रहते इस प्रकार समझ कर मनुष्य धर्म में प्रीत करें।

श्री अवधूत गीता जी में भी इन नाशवान वस्तुओं को स्वार्थी ही वतलाया है।

ऐश्वर्यं मिच्छसि कथं न धते धनानि।
ऐश्वर्यं मिच्छसि कथं न धते हि पत्नी॥
ऐश्वर्यं मिच्छसि कथं न धते ममेति।
ज्ञानामृतं समरसं गगनो पमोऽहम्॥

यह धनादि भी तुम्हारे नहीं हैं। (क्योंकि जब मनुष्य इस संसार को छोड़कर जाता है तब अपने साथ कुछ भी लेजाने की सामरथ्य नहीं रखता केवल पाप पुन्य ही साथ लेजाता है) इसलिये ऐश्वर्य कि इच्छा तुम कैसे करते हो। स्त्री भी तुम्हारी नहीं है वह भी अपने स्वार्थ की है और कोई भी पदार्थ तुम्हरा नहीं है इसलिये ममता करना भी नहीं बनता अतएव ऐश्वर्य की इच्छा करना भी निरर्थक है।

बहुत से मनुष्यों ने ईश्वर भक्ति के विषय में यह विचार होता है कि अभी हम छोटे है जब बड़े होंगे तब ईश्वर भजन करलेगें। लेकिन इस नाशवान शरीर का इतने समय तक विश्वास रखना उचित नहीं क्योंकि न मालूम कब नाश होजावे। गुरुकौमुदी में लिखा है कि:-

अरे भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणे क्षणे।
बहिस्सरति निःश्वासे विश्वास कः प्रवर्तते॥

अरे मनुष्य हरि के नाम को तू क्षण क्षण में भज। वह नाम कैसा है कि कल्यान का एक मन्दिर है जब कि बाहर को श्वास निकलता है तब इस शरीर के भीतर आने का क्या विश्वास है आवे या न आवे।

कर्म मनुष्यों की अवस्था बहुत सी व्यतीत होजाती है यानि बुढा अवस्था आजाती है तब पछताते है कि हाय हमने ईश्वर भक्ति न की और वृथा ही इतनी अवस्था व्यतीत करदी। इसी पछताव में बची हुई अवस्था को पूरी कर लेते है लेकिन पछताव ही में अवस्था को व्यतीत करना ठीक नहीं जो अवस्था बाकी है उसे ईश्वर भजन में लगाना उचित है। किसी कवी ने कहा है कि:-

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र, धरा धन धाम है बन्धन जीको।
बारहीं बार विषय फल खात, अघात न बात सुधारस फीको॥
आन औसान तजो अभिमान, कही सुन कान भजो सियपीको।
पाय परम पद हाथ सो जात, गई सो गई अब राख रहीको॥

इसी विषय पर एक दृष्टान्त है कि:-

किसी नदी किनरे एक किसान का खेत था, जब फसल के पकने के दिन आये तो किसान खेत में मचान बांधकर खेत की रक्षा करने लगा। एकदिन किसान नदी के किनरे पर गया तो उसकी नजर लालों से भरी हुई मटकी पर पड़ी किसान ने लालों को पत्थर समझ कर कपड़े में बाधकर अपने खेत पर ले आया। लालों से पक्षियों को उड़ाने लगा उसने सबलाल पक्षियों के उड़ाने में फेंक दिये और वे लाल पास की नदी में जाकर गिरे। केवल एकही लाल बचगया। बचने का कारण यह था कि उस लाल से किसान का लड़का खेलरहा था। जबकि संध्या समय हुआ तब किसान की स्त्री खेत पर अपने लड़के को लेने के लिये आई, लड़का उस लाल को अपने साथ लेगया जिससे कि वह खेल रहा था। जबकि स्त्री अपने घर पहुंची और रसोई बनाने लगी तो घर में देखा कि नमक नहीं है। स्त्री ने विचारा कि यह लाल पत्थर खूब सूरत है इसका नमक बजार से ले आऊं यह सोचकर स्त्री

बजार गई और दुकान दार से जाकर बोली कि मुझे इस पत्थर के बदले नमक देदेवो वहां पर एक लालों की परीक्षा करने वाला मनुष्य खड़ा हुवा था उसने उस को एक पैसे का नमक दिलवादिया और उस लाल को लेलिया और स्त्री से मकान का पता पूछ कर कहा जो कुछ भी इस (लाल) के बेचने से कीमत उठेगी वह तुम्हारे घर भिजवा दी जावेगी।

उस मनुष्य ने उस स्त्री के घर दूसरे ही दिन एक लक्ष रुपै भिजवादिये। स्त्री ने उन रुपयों में से एकतो अच्छा मकान बनवाया और बाकी रुपै किसी महाजन के यहां पर ब्याज रखदिये। खेत में जाकर अपने पति को बुलाकर अपने मकान पर लाई। किसान ने जब अपनी झोपड़ी की जगह एक बड़ा मकान देखा तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ तब स्त्री ने सब बातें जो कुछ भी हुई थी कह सुनाई तब किसान पछतावा करने लगा कि "हाय मैंने लालों को पत्थर समझकर पक्षियों के उड़ाने में ही फेंक दिये तब उसकी स्त्री ने उसे सन्तोष दिया कि जो बात बीत चुकी उसका पछतावा न करो और अब जो बची है उससे ही सुखों को भोगो।

महानुभावो! दृष्टान्त तो समाप्त होगया अब इसको मनुष्य शरीर पर घटाते हैं, चौरासी लक्ष योनि रूपी खेत में मनुष्य शरीर रूपी हाँडी (मटकी) है और इस शरीर रूपी मटकी में श्वास रूपी लाल भरे हैं। अज्ञानी मनुष्य इन लाल रूपी श्वास की कीमत न जानकर विषय रूपी पक्षियों के उड़ाने में खो देते हैं और जो ज्ञानी मनुष्य हैं वे इन लाल रूपी श्वासों का सदुपयोग करते हैं। किसान केवल एक लाल के रहने से अफसोस करने लगा तब उसकी स्त्री ने सन्तोष दिया कि "जो लाल गये सो तो गये वे पीछे लौटकर कदापि नहीं आसके अब बाकी जो बचा है उससे सुख भोगो" इसी तरह बूढ़ा अवस्था वाले मनुष्यों को अपनी बीती हुई अवस्था पर सोच करना और सोच ही सोच में बचीहुई अवस्था को भी व्यतीत करना उचित नहीं लेकिन जो अवस्था बाकी है उसे ईश्वर भजन में लगाना उचित है।

विषय-मनुष्य को विषयाधीन भी न होना चाहिये जगत में पांच विषय है और उनके भोगने वाली भी पांच ज्ञान इन्द्रिय हैं सारा संसार ही विषयों से बंधा हुआ है। पांच विषय निम्न लिखित हैं।

(१) शब्द (२) स्पर्श (३) रूप (४) रस (५) गंध।

भोगने वाली पांच इन्द्रिये-(१) कान (२) त्वचा (३) नेत्र (४) जिव्हा और (५) नाक विषयों में आसक्त होने से हानि।

शब्द-मृग को वीणा का बाजा अति प्रिय होता है इसलिये पारधी लोग कस्तूरी के लिये अनेक प्रकार के बाजे बजाकर मृगको मोहित करते हैं जबकि मृग सुनते सुनते मग्न होजाता है तब पीछे से अस्त्र शस्त्र द्वारा उसके प्राण हरण करते है।

स्पर्श-हाथी पकड़ने वाले जंगल में जाकर एक बड़ा खड्डा खोदते हैं और फिर उस खड्डे के ऊपर घास व लकड़िया बिछा कर तथा इनके ऊपर मिट्टी गेर कर उस खड्डे को भूमि के समान करदेते हैं और उस खड्डे पर एक कागज की हथिनी बनाकर खड़ी कर देते हैं। और पकड़ने वाले इधर उधर छिप जाते हैं। हाथी जब उधर से निकल आता है तब उस कृत्रिम हथिनी को देखकर अत्यन्त कामातुर होकर उसका स्पर्श करने के

लिये बड़े वेग से दौड़ता है लेकिन ज्योंही वह हाथी उस गड्ढे पर आता है कि वह उस गड्ढे के भीतर गिर पड़ता है। फिर उसमें से बाहर निकल नहीं सकता कुछ दिन बाद वह हाथी भोजन न मिलने से अति कमजोर होजाता है तब पकड़ने वाले मनुष्य हाथी को पकड़ कर सांकलों से बांधकर अपने घर लेजाते हैं।

(३) रूप–पतंग दीपक के रूप पर अति आसक्त होकर बार बार जाता है और अंत में रूप पर ही अपने प्राण गंवाता है।

(४) रस–माछुए लोग मछलियें पकड़ने के लोहों के कांटों में आटे की गोली बनाकर धरते हैं और पानी में छोड़ देते है जब मछली रस विषय में आधीन होकर ज्यों ही उसगोली को मुहमें लेती है त्योंही वह लोहे का कांट उसके तालू में घुसजाता है और बिचारी को मृत्यु का ग्रास होना पड़ता है।

(५) गंध–मधुकर जब कमल पुष्प पर जा कर बैठता है तब उसकी सुगन्ध से इतना मग्न हो जाता है कि सन्ध्या समय कमल पुष्प बन्द होने लगता है लेकिन भ्रमर यही विचारता है कि अभी उड़ता हूं अभी उड़ता हूं, इसी विचार ही विचार में कमल अन्दर बन्द होजाता है। प्रिय सज्जनो! भ्रमर बड़ा ही शक्ती शाली होता है वह कठिन काष्ठ में भी छिद्र कर सकता है तो फिर पुष्प की पंखुरियों को काट डालना उसके लिये कोई कठिन बात नहीं है। लेकिन भ्रमर बाहर निकलने की इच्छा नहीं करता प्रातः काल कमल खिलने का समय होता है तब तक तो भ्रमर भीतर ही भीतर घुटकर अपने प्राण गंवादेता है।

विचारने योग्य बात है कि केवल एक विषय में आसक्ति करने वाले जीवों की जब यह दशा होती है तब इस नरदेह में (मनुष्य शरीर) में पांचो विषय एक साथ भोगने की शक्ती है यदि मनुष्य विषयाधीन होजावे तो फिर नष्ट होने में किंचित् भी सन्देह नहीं है।

यहां यह प्रश्न आता है कि सब विषयों का त्याग कर देना और इन्द्रियों को मार डालना चाहिये? नहीं ऐसा करना उचित नहीं शिष्ट जनों का कथन है कि "यदि विषयों का विधियुक्त सेवन किया जावे तो यह विषय त्याग के ही समान हैं" इसी प्रकार विषयों को भोगना उचित है।

पाचों विषयों को सदुपयोग में लेना चाहियेः–

(१) शब्द–श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द विषय का ग्रहण होता है इसलिये अनेक प्रकार के कुवाक्य असत् भाषण, परनिन्दा तथा ऐसी और बाते जिनके सुनने से उन्माद उत्पन्न हो नहीं सुनना चाहिये परन्तु जिस शब्द के सुनने से अन्तःकरण पवित्र होजाय तथा पाप का नाश होजाय ऐसा हरि कीर्तन तथा शुद्ध वाणी का श्रवण करना चाहिये जिससे परम कल्याण की प्राप्ति हो।

(२) स्पर्श–आलिगन संग आदिक व्यवहार स्पर्शेन्द्रिय से अपनी स्त्री के साथ होते हैं। जब कि अपनी स्त्री में अति आसक्ति रखने वाले मनुष्य का शीघ्र नाश होजाता है। तो फिर पर स्त्री संग करने वाला तथा उसमें लुब्ध होने वाला कैसी अधोगती को प्राप्त होना होगा सो तो लेखनी की शक्ति के बाहर है।

परनारी पैनी छुरी ताहि न लावहु अंग।
रावण के दशशिर गये परनारी के संग॥

अपूर्णम्

---

* शरच्छटा *

(रचिता श्री लक्ष्मी प्रशाद मिस्त्री 'रमा' 'दमोह' सी. पी.)

अंतरिक्ष निर्मल है उदैपूर्ण राकापति, अखंडित आभादिशि अन्त तक छाई है ॥
झरके सहस्र धार मंदाकिनी अम्बर तें, 'लक्ष्मी प्रसाद' मानों भूमि पै सिधाई है ॥
अन्हाई सी पारद में दीसती हैं अष्ट दिशा, धरणी आकाश तक श्वेतता सुहाई ॥
उमड़ि परी है शुभ्र सुषमा को वारिध सो, विमल प्रकाशवान शरद जु न्हाई है ॥

× + × + +

चंद्रमा की ज्योत्स्ना में माधुरी मुस्कान मंद, कुंद में लखाती द्युति दशन तमाम की ॥
खंजनों में नैन छवि दर्शै दुःख भंजन की, आभा है मयूरों में सु-मुकुट ललाम की ॥
हंसों में दिखाती गति उनकी सु-चाल हू की, कंजों में सुहावै प्रभा पाणि अभिराम की ॥
चारों ओर छायो चैन 'लक्ष्मी प्रसाद' आज, शरद की सुषमा में दीसै छवि राम की ॥

उपदेशामृत

(१) जब तक मनुष्य अपने एक २ सांसारिक कार्य, प्रपंच, अधर्म और नास्तिकता को यथार्थ रीति से समझ नहीं सका और अपने लौकिक भावों को अहंता, ममता, राग द्वेष युक्त देख नहीं सका तब तक किसी भी साधन से उसका चित्त शुद्ध नहीं हो सकता। जिस मनोभाव में भगवत्प्रेम अथवा तत्त्व ज्ञान का प्रकाश न होता हो, वह भाव चाहे जितना महान हो, भगवद्भक्ति के मार्ग में हानि कारक ही है।

(२) जब तक मनुष्य भगवत्प्राप्ति के साधनों में नियम पूर्वक प्रवृत्त नहीं होता तब तक भगवत्प्रेम की मधुरता का अनुभव नहीं करसक्ता।

(३) जो मनुष्य अहंकार में ही गौरव मनाता है, वह सहज ही गौरव का अधिकारी है, उसके लिये शान्ति करोड़ों कोस दूर है।

(४) जिसके विचार पवित्र होते हैं, उसके वाक्य हितकर होते हैं और उसका कार्य भी सात्विक होता है श्रेयकी इच्छावाले को विचार पवित्र रखने की परम आवश्यकता है। अशुद्ध विचारवाले से शांति दूर भागती है।

(५) सत्ययुग मेंस्वाभाविक ही धर्मानुसार सदाचरण होता था, द्वापर में प्रतिज्ञा पालन करने के लिये सदाचरण होता था, त्रेतायुग में पुरुषार्थ रूप सदाचरण था, कलियुग के आरंभ में लोकलाज के भयसे सदाचरण था और आजकल तो यदि थोड़ा सदाचरण होता भी है तो नरक के भय से होता है अथवा होता नहीं ! शोक।

(६) सुख और दुःख समान भासें और विपत्ति

में भी चित्त स्थिर रहे, यह ही सच्ची सहिष्णुता है।

(७) श्रद्धा से भगवत् में प्रेम बढ़ता है और अश्रद्धा से कपट की वृद्धि होती है।

(८) प्रभु का उपकार मानते २ थक जाओ तो समझना चाहिये कि तुमने प्रभु का किंचित् उपकार माना है और भगवत् के उपकार का किंचित् स्वरूप तुमने समझा है।

(९) किसी को दुःख न देना, जो अपने विरुद्ध बर्तें, उससे बदले की इच्छा न करना, और इस बातको गुप्त रखाना, इसका नाम सहन शीलता है।

(१०) जो मनुष्य हिंसादि निषिद्ध कर्म करना छोड़ देता है, उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वह शान्ति पाता है और जो मनुष्य भोजन में स्वच्छता, सत्विकता और संयम रखता है, वह ही ज्ञान भक्ति वैराग्य आदि साधनो को साध सक्ता है।

(११) असाधारण यानी संस्कारी मनुष्य तो प्रथम से ही भगवत् की आराधना में मन लगाते हैं और साधारण मनुष्य तो जब संकट पाते २ संसार से निराश हो जाते हैं, तब भगवत् परायण होते हैं और बहुत से मति मंद तो ठोकरों पर ठोकरें खाते रहते हैं और चेतते नहीं है। वाह री ईश्वर माया।

भगवद साकार सम्बन्धी कुछ विचार

[ले० श्री रमापाल

स्वयं भगवान्-कार्णिक पुरुष और भगवत् प्राप्ति वाले तीनो का बर्ताव एक समान ही होता है शक्ती की भी समानता ही होती है क्योंकि जब सर्व शक्तीमान भगवान् को भगवत् प्राप्त मनुष्य ने पाही लिया अर्थात् प्राप्त कर ही लिया तो फिर शक्ति की कमी कैसे मानी जा सक्ती है दूसरी बात यह है कि मनुष्य का जीवन और भूल मिट ही जाते हैं तो बाकी रहा ही क्या आरम्भ में जो कुछ था सो ही रहा और आरम्भ में केवल एक सच्चिदानन्द घन भगवान ही थे इस लिये मानना पड़ेगा कि था सो तो भगवान् ही होता है। फिर द्वितीय भाव का आना भूल है और समय २ पर यदि इन तीनों पुरुषों के स्थूल शरीर कारण वशात् रोगी भी प्रतीत होते हों तो उनका अभाव नहीं लाना चाहिये कारण कि अभाव लाने से श्रद्धा में दोष आता है और फिर उस दोष से विश्वास में कमी होती है और विश्वास की पूर्णता बिना प्राप्ति नहीं होती यदि थोड़ा बहुत अभाव बहुत काल के भ्रम के कारण आ भी जावे तो युक्ती तथा बुद्धी द्वारा साफ करलेना चाहिये श्री वसिष्ठ जी महाराज ब्रह्मज्ञानी का शास्त्र

सत्शास्त्रों में माना गया है उसमें युक्ती ही मुख्य लिखी है तथा युक्ती की बात किसी शास्त्र से विरुद्ध नहीं होती और श्री वसिष्ठ जी ने कहा है कि श्री रामचन्द्र जी कृष्य (दुर्बल) हो गये थे तो समझना चाहिये यह क्या बात थी, तथा किस किस कारणों से बीमार हुये इस का विचार किया जाता है। तथा अपनी बुद्धी के अनुसार लिखा जाता है:-

(१) यह तीनों रूपो वाले भगवान् भक्त वत्सल होते हैं, भक्त जीवों को दुखित देखकर इसी निमत्ति को लेकर संसार में आते हैं। और भगवद् प्राप्त मनुष्य भी भगवान् की प्राप्ती हो जाने के पश्चात् इसी निमित्त शरीर रखता है तथा दास भाव की उपासनों वाले को भगवान् दुनियां के कार्य करके आने की कहदेते हैं जो भक्त वत्सल होता है वह भक्तों को दुःखित देखकर ही दुखी होता है।

(२) वास्तव में वे दुखी नहीं होते अपने दयालुता के चिन्ह दिखाते हैं तथा अपनी वाणी पुगाते हैं जैसा कि भगवान ने श्री गीता जी में कहा है:-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्तमानु वर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः अ० ४ श्लोक ११

क्योंकि हे अर्जुन जो मेरे को जैसे भजते हैं मैं भी उनको वैसे ही भजता हूं।

(३) तथा वे अन्तर्यामी होने से छिपने की बाण पड़ी हुई है कि इस बीमारी की ओटमें कोई पिछानेगा नहीं। तथा पाप और अभाव से सदा ही छुपे रहते हैं और भाव से प्रगट हो जाते हैं।

(४) अपने भक्तों के विश्वास की परीक्षा करते हैं और देखते हैं कि इन्हें मेरी सांच आई या नहीं।

(५) तथा शिक्षा दे रहे हैं कि मेरी तरह कोई बीमार हो जावे तो भी भजन ध्यान नहीं छोड़ना चाहिये औरों को भी करने के वास्ते समझाना चाहिये।

(६) तथा समय का बर्ताव भी देखना पड़ता है सतयुग और द्वापर में तो मनुष्यों के श्रद्धालु होने से वाणी की शिक्षा ही पर्याप्त थी परन्तु वर्तमान समय में श्रद्धा हीन मनुष्य होने से कर्म करके दिखाने की आवश्यक्ता है तथा समय विचार कर शिक्षा देरहे हैं कि बच्चों को कर्म करके दिखावो।

(७) निष्काम कर्म का प्रभाव और रस्ता दिखाया करते हैं चाहे शरीर छूट जावे पर भगवान् से नाशवान वस्तु के लिये प्रार्थना न करो।

मरजाऊं मांगू नहीं अपने तनके काज।
परमारथ के कारणे मोहे न आवे लाज॥

(८) भगवान् को कर्म करने की आवश्यक्ता नहीं है तो भी दूसरों के पथ प्रदर्शनार्थ कर्म करते हैं।

मेरे विचार से तो उक्त कारण ही समझ में आये हैं बाकी भगवान् जाने।

हरिजनों से सुना गया है कि श्री कृष्ण अवतार के बाद और श्री कलकी अवतार से पहिले धर्म स्थापनार्थ श्री निष्कलंकी अवतार पैदा होंगे

प्रेमोन्मत्त दशा

लें०– प्रज्ञाचक्षु पं० धनश्ण शास्त्री]

इतना बड़ा प्रेमोन्मत्त का वियोग ताप सह सकता है। कदापि नहीं। वियोग ताप भी यदि उन्मादी को हो जावे तब उसकी अवस्था अवर्णनीय होगी। तबतो फिर यही दोहा पूर्ण संघटित होगा।

यह प्रसित अहि बात बस, पुनि तेहि बढ़ी मारि।
ताहि पिआवत बारुणी, कहो कौन उपचार ॥

अतः वियोग तप सहने की शक्ति प्रेमोन्मत्त में असंभव है।

आयोरी घनश्याम, एक सखी औचक कहरि।
बिहंसत निकरी बाम, देखत दुख दूनो भयो।
श्याम नाम सुनत सचेत है उझकि झांकि।
फेरि हरि गिरे भूमि नेकहूं न सुधि गात ॥
आह कै उसोसेंति बसेंदु न आशाय देत।
सीचे कर मलि मीचै, बारि दृग जल न जात।
निपट भई अधीर कहत, बनैन पीर।
अबहीं ते जो पै बीर ऐसी दशा दुशात ॥
कहां कहौं एरी वाकी होयगी दशा धौं कौन।
"पी कहां कहेगो जो पपीहा कहूं आधी रात ॥

अतः प्रेमोन्मादी का सचेत होना और अचेत होना एक अवस्थांतर मात्र है नाम श्रवण से ही सचेत होना है और अदर्शन से अचेत तो उसका मूल ही है।

नाम श्रवण मात्र से ही दर्शन लालसा, सचेत करती रहती है। जिस समय महाराज ने गोपियों के परितोषार्थ व्रजमें श्रीमान् श्री उधो जी को भेजा था तब श्री उद्धव जी परम योगेश्वरी व्रजांगनाओं के प्रेम से उनमत्त होगए। इनका विज्ञान कांण्ड विस्मृत होगया। इसी प्रयोजन से भेजागया था की भक्ति रसपान करके यह भी उनमत्त होजावें।

पठयो यापि महेश, उधो को एहि काज हरि,
हैं आये वो संत, व्रजवासिन के रसपाते।

वास्तव में ज्ञानयोग की धारा में जमुना के अन्तर्गत होगया। प्रेमोन्माद से सचेत अचेत होने लगे।

लौटने पर महाराज ने पूछा कि कहिए व्रज का क्या समाचार है तो अपने जाने से ही इनकार करने लगे। और कहते हैं:–

व्रजके निकट जाय फिरि आयो।
गोपी नैन नीर सरिता यह पार न उतरन पायो।
शकर आशा नाव सीस धरि बहु विधि किहके उपाई ॥
तामे हमहूं कछुक दूर लौ अमगन डुबकी खाई।
योग सिद्ध आचार नेम धौंकित बहिगयो गोसाई।

फिर जब महाराज ने कुशल मंगल पूछा तो उन्मादी की भांति आप व्रज की व्यवस्था कहते हैं।

अस्ति स्वस्ति मती कलिन्द तनया, कल्पः कदम्ब द्रुमः।
कुञ्जनां कुशलं मयर मिथुनै गोवर्धनो वर्त्तते ॥

किन्वाम्घन् कुशलं वद्वोद्धव पुनर्नंदे सर्वे पृच्छतो।
मन्दोपमा मधुरापते रपिद्दक्षः, पेतु पयो बिन्दवः॥

सत्य है! वे उन्मत्त कैसी बातें करेंगे। अनुमान करना चाहिए। पहले तो महाराज के प्रश्न कैसे सुन्दर हैं कि जिससे उनकी उनमत्तता स्वयम् प्रतीत होती है। किसी के घरबार या किसी मनुष्य के अथवा किसी प्यारी सखी के कुशल मंगल के अतिरिक्त अपनी प्यारी यमुना का हाल पूछते हैं कि हे उद्धव आप कहो कि यमुना स्वतिमती है। वहां के कदम्ब द्रु म स्वस्ति पूर्वक हैं। अहा! कुन्जो की कुशल कहो।

मयूर मिथुन पूर्वक गोवर्धन है। औरों का कुशल कहो। ऐसे सभा में पूछते ही मथुरा पति के नेत्रों से उष्ण बिन्दु गिरे। प्रेमोन्मादी को केवल स्थान मात्र का स्मरण रहता है अतएव यमुना कदम्ब कुन्ज गोवर्धन पूछते हुए अन्यत शद्व में हरि अश्रु पात होने लगे यमुना के स्मरण हा से महाराज की आर्द्रता सिद्ध है। कि यमुना कूलमें व्रज है। कदम्ब छाया स्मरण से शीतलत्व सिद्ध करते हैं। कुन्ज के स्मरण से विहार स्थल का परिचय मिलता है। इससे महारास स्थान, गोचार्य, गोपी प्रेम, प्रदर्शित होता है। गोवर्धन के स्मरण से इन्द्र कोप और गोवर्धन धारण स्मरण पूर्वक एकत्र सम्बाप्त स्मरण आरहा है। अन्यत शब्द से पृथक२ ग्वाल ग्वालनियों को स्मरण करना चाहते हैं। परन्तु स्मरण विषयक प्रश्न तो अलग रहा उच्चारण मात्र ही में विह्वलता से अश्रुपात होने लगा। जिसका प्रश्न ऐसा है उसका उत्तर भी विचित्र ही समझना चाहिए।

क्षीणंम गोकुल मण्डलं पशुकुलं सस्वापनिष्कुन्दते।
सखाः कोकिल पंकय शिखि कुलं, नःराकुलं नृत्यति॥

इत्थम् त्वद् विरहेणि हंत भगवन् सर्वेपि दैन्यंक गता।
किन्वेका यमुना कुरङ्ग नैना, नेत्राम्बुभिर्वर्धते॥

भाव यह है कि आप वैसे ही उन्मत्त उत्तर भी देरहे हैं कि गोकुल मंडल सुख गया और पशुकुल हां सखे! कृष्ण कह कह रो रहे हैं। कोकिल पंति मूक होगए है।

अर्थात् नहीं बोलते! मयूर कुल व्याकुल बिना घनश्याम नहीं नाचते! इस प्रकार हे भगवन् आपके विरह से हत होकर सब दैन्य भावको प्राप्त हैं। किन्तु यमुना कुरंग नैनाओ के नेत्र जलसे बढ़रही है अर्थात् मोटी हो रही हैं। यहां सबका दौर्बल्य दिखाते हुए नेत्रांबु से जमुना वृद्धि महाराज के प्रोत्साह का कैसा उत्तम निराला ढंग उद्धव ने निकाला है। और साथ २ यह भी उन्मत्त वाक्य है कि:-

वेगि चलो उमड़ो गिरि संगको, बाढ़ घरोही धारी लहती है।
उष्ण महा जलधारी वेनात भठी अस देव वधू कहती है॥
कान्ह कहां है गई बटको दल, चोरो सबै अगको चहती है।
गोविन्द के अविधान ते संकर कोटिन सुर सुता बहती है॥

ठीक प्रेमोन्मादी की यही दशा सचेत अचेत हुआ करती है। न तो उसको संताप सहने की सामर्थ और न आश्रय छूटता अतः-

दिन नहीं चैन रात नहि निद्रा,
बिन प्रभु सुरति निहारे।

इसलिये कल्याण अभिलाषियों को चाहिए को प्रेमोन्मत्त होकर सर्वथा सतसंग द्वारा दर्शन लालसा बढ़ाने के प्रयत्न में नाम, गुणगान, करते रहे। मैं तो केवल मनसे इतना ही कहूंगा कीः-

आसन एक लसैं हरि राधिका, चन्दन खौरी उतै इतै रोरी।
मौर उतै सिर फूल इतै श्री श्यांम उतै आ इतै तन गोरी॥
परदान वो पीत पिछौरी उतै इते पेंचरा चुन्दर से रंगबोरी।
भाखे सुबस सुनो मन मेरे आवें निस दें समनोहर जोरी॥

इस प्रकार प्रेमोन्मत्त सतसंग कल्याण कारी समझना चाहिए।

इति।

भजन

ओ३म् निरंजन ररंकार प्रभु सोऽहं सत्य नाम करतार।
अच्युत गुरु गोविन्द दातार परमानन्द रूप निरधार ॥
एक अखण्ड ज्ञान भण्डार तुमरी ज्योति का उजियार।
मैं, मैं, मैं पन सर्वाधार नेति नेति कर वेद उचार ॥
एक आत्मा अपरम्पार शंकर ब्रह्म सर्व का सार।
ओत प्रोत सबमें निरंकार जीवन प्राण आप ओंकार ॥
हरि नारायण अग्नि तार देव देव मैं करहुं पुकार।
कृष्णानन्ताऽचलहं गौड़ हूं फट अल्ला सर्व पसार ॥
विनवो तुमको बारम्बार प्रीतम प्यार करो उद्धार।
तद्धन गणपति नैनमस्कार होवे अनन्त तुम्हें नमस्कार ॥

२

बीत गये दिन भजन बिना रे ॥ टेक ॥
बाल अवस्था खेल गंवायी,
जब ज्वानी तब मान किया रे।
लाहे कारण मूल गंवाई,
अजहुं न मिटी तेरी मनकी तृष्णा रे ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
पार उतर गये सन्त जना रे ॥

३

अवधू बेगम देश हमारा ॥
राजा रंक फकीर बादशाह, सबसे कहूं पुकारा ॥
जो तुम चाहत अहो परमपद, बसि हो देश हमारा ॥
जो तुम आये झीने होके, तजो मनी को भारा ॥
ऐसी रहनी रहो रे गोरख, सहज उतर जाव पारा ॥
सत्य नाम की हैं महताबें, साहिब के दरबारा ॥
वचना चाहो कठिन काल से, गहो शब्द टकसारा ॥
कहैं कबीर सुनो हो गोरख, सत्य नाम है सारा ॥

४

परमात्म गुरु निकट विराजें जाग २ मन मेरे ॥टेक॥
धायके सत्गुरु चरणन लागे काल खड़ा सिर तेरे।
छिन २ पल २ सभी संहरे बहु विधि देत न देरे ॥
जुगन २ तोहे सोवत बीता अजहुं न जाग सवेरे।
काम क्रोध मद लोभ फन्द तज क्षमा दया दिल हेरे ॥
भाई बन्धु कुटुम्ब कबीला सब स्वारथ के चेरे।
जब जम जालम आन पकरि है कोई न संग चलेरे ॥
भवसागर बाकी है धारा लख चौरासी फेरे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो जगसे किये निबेरे ॥

५

चले गये दिलके दामन गीर ॥ टेक ॥
जब सुधि आवे तुमरे दरश की उठे कलेजे पीर ॥
नट बर भेष नयन रतनारे सुन्दर श्याम शरीर ॥
बृन्दावन बंशीवट त्यागो निर्मल जमना नीर ॥
आप ही जाय द्वारका छाये खारी नद के तीर ॥
सब गोपीयन सौं नेह बिसारो ऐसे भये बे पीर ॥
सूरदास ललिता उठ बोली आखिर जात अहीर ॥

६

नाथ अनाथन की सुध लीजै ॥ टेक ॥
गोपी ग्वाल गाय गोसुत सब,

दीन मलीन दिनहि दिन छीजै ॥
नैन सजल धारा बाढ़ी अति,
बूड़त ब्रज किन कर गहि लीजै ॥
इतनी बिनती सुनहु हमारी,
बार कहुं पतियां लिख दीजै ॥
चरण कमल दरसन नव नौका,
करुना सिन्धु जगत जस लीजै ॥
सूरदास प्रभु आस मिलन की,
एकबार आवन ब्रज कीजै ॥

७

नैन सलौने श्याम हरि कब आवेंगे ।
वे जो देखत राते राते फूलन फूले डार ।
हरि बिन फूल करीसीं लागत झरि २ परत अंगार ॥
फूल बीनन न पाऊं सखीरी हरि बिन कैसे फूल ।
सुनरी सखी मोहि राम दुहाई लागत फूल त्रिशूल ॥
जबते पनिघट जांऊं सखीरी या यमुना के तीर ।
भरि २ यमुना उमंडि चलत है इन नयनन के नीर ॥
इन नैनन के नीरस खीरी सेज भई हरि नाव ।
चहति हौं बाहि पै चढ़िके हरि जी के ढिग जाव ॥
लाल पियारे प्राण हमारे रहे अधर पर आई ।
सूरदास प्रभू कुञ्ज बिहारी मिलन नहीं क्यों धाई ॥

८

इस नन्द के फरजन्द ने बांकी अदा धरी ॥ टेक॥
भौंहें कमान झुक रही गोशे से आ मिली ।
तिरछा मुकुट धर शीश पर मुरली अधर धरी ॥
कानों में कुण्डल झलकते गल मोतियों की लरी ।
चितवन जो तेरी भाला जिन घायल मुझे करी ॥
शिर मुकुट सोहे मोरका और पाग जर करी ।
इमि सूर कहै श्याम सों धन्य आज की घरी ॥

९

मेरे तो गिरधर-गोपाल दूसरो न कोई ॥ टेक ॥
ज़ाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु, आपनो न कोई ।
छांड दई कुलकी कान, का करिहैं कोई ।
सन्तन ढिग बैठि बैठि, लोक-लाज खोई ॥
चुनरी के किये टूक, ओढ़ लीन्हि लोई ।
मोती मूंगे उतार, बन माल पोई ॥
अंसुवन जल सींच सींच, प्रेम बेल बोई ।
अब तो बेल फैल गई, होनी हो सो होई ॥
दूध की मथिनिया बड़े प्रेम से बिलोई ।
माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पिये कोई ॥
आई मैं भक्ति काज, जगत देख मोही ।
दासी मीरां गिरधर प्रभु, तारो अब मोही ॥

१०

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल ॥
मोहनी मूरति सांवरि सूरति,
नैना बने विशाल ।
अधर सुधा रस मुरली राजत,
उर बैजन्ती-माल ॥ १ ॥
छुद्र घण्टि का कटि-तट शोभित,
नूपुर शब्द रसाल ।
मीरां प्रभु सन्तन सुखदाई,
भक्त-बछल गोपाल ॥ २ ॥

११

मन रे सांचा गहा विचारा ॥
राम नाम बिन मिथ्या मानो, सगरो यह संसारा ॥
जाको योगी खोजत हारे, पायो नहीं तिहिं पारा ॥
सो स्वामी तुम निकट पिछानो, रूप रेखते न्यारा ॥
पावन नाम जगत् में हरि को, सबहूं नाहि संभारा ॥
नानक शरण परयो जग बन्दन, राखो बिरद तिहारा

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)।
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	=)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥।)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहिये।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक सुमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।